वार्षिक रु. ६० मूल्य रु. ८.००

विवेक-ज्योति

वर्ष ५० अंक ८ अगस्त २०१२

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१२

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ५०
अंक ८

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

प्रिंट आर्डर - २३, २५०

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

लेखकों से निवेदन

रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

वर्ष ५० अगस्त २०१२ अंक ८

पुरखों की थाती

ऋणशेषोऽग्निशेषश्च शत्रुशेषस्तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न रक्षयेत् ।।८८।।

– बचा हुआ ऋण, अग्नि तथा शत्रु – बारम्बार तेजी से बढ़ जाते हैं, अत: इन्हें जरा भी बाकी नहीं रखना चाहिये।

औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशाक्रमाऽऽगतम् ।
रक्षकं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ।।८९।।

– मित्र चार प्रकार के होते हैं – अपने पुत्र-पौत्र आदि, विवाह से प्राप्त सगे-सम्बन्धी, वंश-परम्परा से चले आए पड़ोसी आदि और आकस्मिक संकटों से रक्षा करनेवाला।

एकस्य कर्म संवीक्ष्य करोत्यन्योऽपि गर्हितम् ।
गतानुगतिकं लोका न लोकास्तत्त्वदर्शिनः ।।९०।।

– एक व्यक्ति को गलत कार्य करते देखकर दूसरा भी उसी की नकल करता है। सामान्य लोग ज्ञानी नहीं होते, वे भेड़ों के समान दूसरों का अन्धानुकरण करते हैं।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य ।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे
छिद्रेष्वनर्था बहुली-भवन्ति ।।९१।।

– एक दुखरूपी समुद्र को पारकर ही नहीं कर पाया था कि दूसरा दुख आ गया। क्योंकि दुर्दिन आने पर विपत्तियाँ एक के पीछे एक आती ही रहती हैं।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं तद्-वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ।।९२।।

– एक ही सुगन्धित फूलों से परिपूर्ण सुन्दर वृक्ष से ही सारा वन उसी प्रकार सुवासित हो जाता है, जिस प्रकार एक ही सुपुत्र से पूरा कुल महिमा को प्राप्त होता है।

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा त्वनृणी भवेत् ।।९३।।

– गुरु अपने शिष्य को जो एक अक्षर भी देते हैं, पृथ्वी पर कोई धन नहीं है, जिसे देकर व्यक्ति उससे उऋण हो सके।

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।९४।।

– संसार में कुछ ऐसे सत्पुरुष होते हैं, जो दूसरों के हित के लिए अपना स्वार्थ त्याग देते हैं। दूसरे सामान्य कोटि के लोग – केवल तभी तक दूसरों की सहायता करते रहते हैं, जब तक कि उनका अपना स्वार्थ आड़े नहीं आता। तीसरे नर-राक्षस श्रेणी के लोग अपने स्वार्थ-साधन हेतु दूसरों के हित का नाश करते रहते हैं। परन्तु जो लोग बिना किसी स्वार्थ के ही दूसरों के हित का नाश करनेवाले चौथे दर्जे के लोग हैं, उन्हें हम क्या कहें, यह समझ में नहीं आता !

एको ध्यानम् उभौ पाठं त्रिभिर्गीतं चतुःपथम् ।
पंच-सप्त कृषिं कुर्यात् संग्रामं बहुभिः जनैः ।।९५।।

– ध्यान अकेले होता है, पाठ दो लोगों का, गायन तीन का, यात्रा चार की, खेती पाँच-सात की और युद्ध करना बहुत-से लोगों का एक साथ होता है।

ऐक्यं बलं समाजस्य तदभावे स दुर्बलः ।
तस्मात् ऐक्यं प्रशंसन्ति दृढं राष्ट्र-हितैषिणः ।।९६।।

– समाज में एकता से ही शक्ति आती है, एकता के अभाव में वह दुर्बल हो जाता है; इसीलिये निष्ठावान देशभक्त लोग राष्ट्रीय एकता की प्रशंसा किया करते हैं। ❖ **(क्रमशः)** ❖

प्रार्थना-गीति

– १ –

(पटदीप–कहरवा)

हमारी यह विनती भगवान,
अग-जग में सुख-शान्ति विराजे, सबका हो कल्याण ।।

सदाचार फैले लोगों में, रहे न मति नश्वर भोगों में,
एक बार फिर से दुनिया में, सच्चा हो इनसान ।।

जाति-वर्ग के भेद शिथिल हों, समता औ सद्भाव सबल हों,
सबमें ईश्वर देख करें हम, सेवा औ सम्मान ।।

प्राणी त्रस्त मोह-माया से, भीत हो रहे निज छाया से,
चिदालोक फैलाओ जग में, दूर करो अज्ञान ।।

अर्पण हो यह जीवन अपना,
टूटे भव का झूठा सपना,
अन्त समय होकर 'विदेह' हम,
प्राप्त करें निर्वाण ।।

– २ –

(भूपाली–रूपक)

नाम जप सानन्द उनका ।
व्याप्त है सर्वत्र जग में,
सत्य-शिव-सौन्दर्य जिनका ।।

घोर है यह मोह माया,
तू भ्रमित होकर लुभाया,
भोग-सुख-ऐश्वर्य सबको
ले समझ, ज्यों फूस-तिनका ।।

नाम सब सामर्थ्यशाली,
राम, शिव, हरि, कृष्ण, काली,
तर गये जिनके भरोसे,
गज, अजामिल और गणिका ।।

पूर्ण होंगे दिन यहाँ के,
अलविदा होंगे जहाँ से,
अन्ततः पाकर परम गति,
दूर होगा खेद मन का ।।

– *विदेह*

पश्चिमी देशों में धर्म-प्रचार

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों तथा व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में यत्र-तत्र उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का एक संकलन कोलकाता के अद्वैताश्रम द्वारा 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर बँगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शंकर ने 'आमि विवेकानन्द बलछि' शीर्षक के साथ एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित कराया है। हम उपरोक्त दोनों ग्रन्थों तथा कुछ अन्य सामग्री के संयोजन के साथ यह संकलन क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। इसके द्वारा स्वामीजी के अपने ही शब्दों में उनके जीवन तथा ध्येय का एक प्रेरक विवरण प्राप्त होगा। – सं.)

(गतांक से आगे)

१८ मार्च, १८९४ : कलकत्ता के पत्र को मेरे पास भेजने के लिए तुम्हें मेरा हार्दिक धन्यवाद ! यह कलकत्ता के मेरे गुरुभाइयों द्वारा भेजा गया था और यह मेरे गुरुदेव के जन्म-महोत्सव को मनाने के लिए व्यक्तिगत निमंत्रण के तौर पर लिखा गया था। उनके विषय में तुमने मुझसे बहुत कुछ सुना है, अतः इस पत्र को पुनः तुम्हारे पास लौटा रहा हूँ। पत्र में लिखा है कि मजूमदार कलकत्ते लौट आया है और यह प्रचार कर रहा है कि विवेकानन्द अमेरिका में दुनिया के सारे पाप कर रहा है। भगवान उसका भला करें। तुम इसके लिये दुखी मत होना – मेरे देशवासियों के मन में मेरे चरित्र के विषय में इतनी अच्छी धारणा है और मेरे गुरुभाई, मेरे अभिन्न मित्र मुझे इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि वे लोग ऐसी बकबासों पर जरा भी विश्वास नहीं करेंगे। तो यही तुम्हारे अमेरिका का 'अद्भुत आध्यात्मिक पुरुष' है ! यह उनका दोष नहीं है; जब तक कोई वास्तव में आध्यात्मिक न हो जाय, अर्थात् जब तक किसी को आत्मस्वरूप में सच्ची अनुभूति नहीं हो जाती और आत्मा के जगत् की एक झाँकी नहीं मिल जाती, तब तक वह बीज को भूसे से, गहराई को थोथी बातों से पृथक् नहीं कर सकता। मुझे बेचारे मजूमदार के लिए अफसोस है कि वह इतना पतित हो गया। प्रभु उस वृद्ध बालक का भला करें। ...

पत्र के भीतर का पता अंग्रेजी में है और उसमें मेरा पुराना नाम लिखा है। इसे मेरे बचपन के एक मित्र ने लिखा है, जो अब संन्यास ले चुका है। यह एक कवित्वमय नाम है। पत्र में लिखा हुआ नाम संक्षिप्त रूप में है, पूरा नाम नरेन्द्र है, जिसका अर्थ है 'मनुष्यों का स्वामी' ('नर' अर्थात् मनुष्य और 'इन्द्र' का अर्थ है शासक या स्वामी)। यह बड़ा ही हास्यास्पद है, है न? पर मेरे देश में ऐसे ही नाम होते हैं; हम लाचार हैं; किन्तु मुझे खुशी है कि मैं इसे छोड़ चुका हूँ।[१८]

शिकागो, १९ मार्च १८९४ : इस देश में मुझे किसी चीज का अभाव नहीं है। परन्तु यहाँ भिक्षा का रिवाज नहीं। मुझे परिश्रम करना पड़ता है, यानी जगह-जगह भाषण देना पड़ता है। यहाँ जैसी गर्मी है, जाड़ा भी वैसा ही है। गर्मी कलकत्ते से तनिक भी कम नहीं। जाड़े की बात क्या कहूँ? समूचा देश दो-तीन हाथ, कहीं-कहीं तो चार-पाँच हाथ गहरे बर्फ से ढक जाता है। दक्षिण की ओर बर्फ नहीं पड़ती। पर बर्फ तो छोटी चीज हुई। जब पारा शून्य डिग्री पर रहता है, तब बर्फ गिरती है। कलकत्ते में पारा १५ डिग्री तक नीचे बहुत ही कम उतरता है और इंग्लैंड में शायद ही कभी शून्य तक पहुँचता है। परन्तु यहाँ पारा शून्य से २० डिग्री तक नीचे चला जाता है। उत्तरी हिस्से – कनाडा में पारा तक जम जाता है, तब अल्कोहल के तापमापक यंत्र का उपयोग किया जाता है। जब बहुत ही ठण्डक होती है, अर्थात् जब पारा २० डिग्री (फैरेनहाइट) के नीचे रहता है, तक बर्फ नहीं गिरती। मेरी धारणा थी कि बर्फ गिरने पर ठण्डक बहुत अधिक बढ़ जायगी। पर ऐसी बात नहीं, बर्फ जरा कम ठण्डे दिनों में गिरती है। बहुत ठण्डक में एक तरह का नशा जैसा हो जाता है। उस समय गाड़ियाँ नहीं चलतीं; केवल बिना पहिये का स्लेज जमीन पर फिसलकर चलता है। सब कुछ जमकर सख्त हो जाता है – नदी, नाले और झील पर से हाथी भी चल सकता है। नियाग्रा का प्रचण्ड प्रवाहवाला विशाल निर्झर जमकर पत्थर हो गया है ! परन्तु मैं अच्छी तरह हूँ। पहले थोड़ा डर लगता था, फिर तो जरूरत के अनुसार एक दिन रेल से कनाडा के पास, तो दूसरे दिन अमेरिका के दक्षिण भाग में व्याख्यान देता फिर रहा हूँ। गाड़ियाँ भी, रिहायसी कमरों की तरह भाप के नलों से खूब गरम रखी जाती हैं और बाहर चारों ओर धवल हिम का साम्राज्य फैला रहता है। अहा, कैसी अनोखी छटा होती है !

बड़ा डर था कि मेरी नाक और कान गिर जायँगे, पर आज तक कुछ नहीं हुआ। हाँ, बाहर जाते समय बहुत-से गर्म कपड़े, उन पर फर का कोट, जूते, फिर उन पर ऊनी जूते – इन सब से लैश होकर निकलना पड़ता है। साँस निकलते ही

दाढ़ी-मूछों में जम जाती है ! उस पर तमाशा तो यह है कि घर के भीतर, बिना एक डली बर्फ दिये ये लोग पानी नहीं पीते। घर के अन्दर की गरमी के कारण वे ऐसा करते हैं। हर कमरा और सीढ़ी भाप के नलों से गरम रखी जाती है। ये लोग कला-कौशल में अद्वितीय हैं, भोग-विलास में अद्वितीय हैं, धन कमाने में अद्वितीय हैं और खर्च करने में भी अद्वितीय हैं। एक कुली की दैनिक आय ६० रु. है, नौकर की भी वही। ३ रु. से नीचे किराये की गाड़ी नहीं मिलती। चार आने से कम का चुरुट नहीं है। २४ रु. में मध्यम दर्जे का एक जोड़ा जूता मिल जाता है। ५०० रु. में एक पोशाक बनती है। जैसे कमाते हैं, वैसे ही खर्च भी करते हैं। एक-एक व्याख्यान में २०० से ३००० रु. तक मिल सकते हैं। मुझे १५०० रु. तक मिले हैं। हाँ, अब तो मेरा भाग्य खुल गया है। ये मुझे प्यार करते हैं और हजारों लोग मेरे व्याख्यान सुनने आया करते हैं।

प्रभु की इच्छा से मजूमदार महाशय से मेरी यहाँ भेंट हुई। पहले तो बड़ी प्रीति थी, पर जब पूरे शिकागो शहर के नर-नारी मेरे पास झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे, तब मजूमदार भैया के मन में आग लग गई। मैं तो देख-सुनकर दंग रह गया !... मेरे जैसा उनका न हुआ, इसमें मेरा क्या दोष?... और मजूमदार ने धर्म-महासभा के पादरियों के पास मेरी काफी निन्दा की। "यह कोई नहीं; यह ठग है, ढोंगी है; यह तुम्हारे देश में कहता है कि मैं साधु हूँ" – आदि कहकर उनके मन में मेरे बारे में गलत धारणा पैदा कर दी। प्रेसिडेंट बैरोज को ऐसा भड़काया कि अब वे मुझसे ठीक से बात तक नहीं करते। उन लोगों ने अपनी पुस्तकों-पुस्तिकाओं के द्वारा मुझे दबाने की भरसक चेष्टा की, परन्तु गुरुदेव मेरे साथ हैं। दूसरे लोग क्या कर सकते हैं? सारा अमेरिका मेरा आदर करता है, मेरी भक्ति करता है, पैसे देता है, गुरु जैसा मानता है – मजूमदार बेचारा क्या करे? पादरी आदि भी मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? और यहाँ के लोग भी तो विद्वान् हैं ! ... भाई, ये लोग तत्त्वज्ञान सीखना चाहते हैं, विद्या चाहते हैं; थोथी बातों से अब काम नहीं चलेगा। ...

भाई, मेरी तो बुद्धि ठिकाने आ गयी। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है – **ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे** – जो लोग अकारण ही औरों के हित में बाधा डालते रहते हैं, उन्हें क्या कहा जाय, यह हम नहीं जानते ! (भर्तृहरि)। भाई, सारे दुर्गुण चले जाते हैं, पर वह अभागी ईर्ष्या नहीं जाती... ! यही हमारा राष्ट्रीय दोष है – परनिन्दा और दूसरों की महानता से जलना। केवल हमी बड़े हों – दूसरा कोई बड़ा न हो सके। ...

जिस देश के करोड़ों लोग महुआ खाकर दिन गुजारते हैं, और दस-बीस लाख साधु और दस-बारह करोड़ ब्राह्मण उन गरीबों का खून चूसकर पीते हैं और उनकी उन्नति के लिए कोई चेष्टा नहीं करते, वह देश है या नरक? वह धर्म है या पिशाच का नृत्य? भाई, जरा विचार करके समझो – मैं घूम-घूमकर सारे भारत को देख चुका हूँ; इस देश को भी देखा है – क्या बिना कारण के कहीं कोई कार्य होता है? क्या बिना पाप के कहीं सजा मिल सकती है?

सर्वशास्त्रपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारस्तु पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

– "सब शास्त्रों और पुराणों में व्यास के ये दो वचन हैं – परोपकार से पुण्य होता है और परपीड़ा से पाप।" ...

भाई, यह सब देखकर – खासकर देश की निर्धनता और अशिक्षा को देखकर मुझे नींद नहीं आती। कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में, भारत की अन्तिम चट्टान पर बैठकर मैंने एक योजना सोच निकाली। हम जो इतने संन्यासी घूमते फिरते हैं और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निरा पागलपन है।

क्या हमारे गुरुदेव कहा नहीं करते थे – **खाली पेट धर्म नहीं होता?** वे गरीब लोग, जो जानवरों का सा जीवन बिता रहे हैं, उनका कारण अज्ञान है। पाजियों ने चारों युगों में उनका खून चूसा है और उन्हें पैरों-तले कुचला है। ...

अब मान लो कि यदि कोई निःस्वार्थ परोपकारी संन्यासी गाँव-गाँव में विद्यादान करता फिरे और भाँति-भाँति के उपायों से मानचित्र, कैमरा, भू-गोलक आदि के सहारे चाण्डाल तक सबकी उन्नति के लिए घूमता फिरे, तो क्या इससे समय पर कल्याण नहीं होगा?... तात्पर्य यह कि 'यदि पहाड़ मुहम्मद के पास न आये, तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास जायेगा।' गरीब लोग इतने बेहाल हैं कि वे स्कूलों और विद्यालयों में नहीं आ सकते।... एक राष्ट्र के रूप में हम अपनी राष्ट्रीयता खो बैठे हैं और यही सारे अनर्थों का मूल कारण है। हमें अपने राष्ट्र को उसका खोया हुआ व्यक्तित्व लौटा देना होगा और आम जनता की उन्नति करनी होगी। ...

इसे सम्पन्न करने के लिए पहले मनुष्य चाहिए और उसके बाद धन। गुरु की कृपा से मुझे हर नगर में दस-पन्द्रह व्यक्ति मिल गये। मैं धन की चेष्टा में घूमा, परन्तु भारतवर्ष के लोग भला धन देते !!... स्वार्थपरता की मूर्ति, भला वे धन देते ! इसीलिए मैं अमेरिका आया हूँ कि स्वयं धन कमाऊँगा, उसके बाद स्वदेश लौटकर अपने जीवन के इस एकमात्र लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपना बाकी जीवन न्यौछावर कर दूँगा।

जैसे हमारे देश में सामाजिक गुणों का अभाव है, वैसे ही यहाँ आध्यात्मिकता का अभाव है। मैं इन्हें आध्यात्मिकता दे रहा हूँ और ये मुझे धन दे रहे हैं। मैं कितने दिनों में सफल होऊँगा, नहीं जानता। ये लोग हमारे जैसे पाखण्डी नहीं है और ईर्ष्या तो इनमें है ही नहीं। मैं किसी भी भारतवासी के भरोसे नहीं हूँ। स्वयं प्राणपण चेष्टा से अर्थ-संग्रह करके अपना

उद्देश्य सफल करूँगा, या फिर उसी के लिए मर-मिटूँगा – **सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति** – जब मृत्यु निश्चित ही है, तो फिर किसी सत्कार्य के लिए प्राणत्याग ही श्रेयस्कर है।

शायद तुम सोचोगे कि क्या असम्भव बातें कर रहा है! तुम्हें नहीं मालूम कि मेरे भीतर क्या है? यदि तुममें से कोई मेरे उद्देश्य की सफलता में मेरी सहायता करे, तो ठीक है, अन्यथा गुरुदेव मुझे मार्ग दिखायेंगे।[१९]

अमेरिका, ग्रीष्म काल, १८९४ : यह बड़ा मजेदार देश है। गर्मी पड़ रही है, आज सुबह बंगाल के वैशाख जैसी गर्मी थी, तो अभी इलाहाबाद के माघ जैसा जाड़ा। चार ही घण्टे में इतना परिवर्तन! यहाँ के होटलों की बात क्या लिखूँ? न्यूयार्क में एक होटल है, जहाँ ५,००० रुपये तक रोजाना एक कमरे का किराया है, खाने का खर्च अलग! भोग-विलास के मामले में ऐसा देश यूरोप में भी नहीं है। यह देश निस्सन्देह संसार में सबसे धनी है – रुपये पानी की तरह खर्च किये जाते हैं। मैं शायद ही कभी किसी होटल में ठहरता हूँ, प्राय: मैं यहाँ के बड़े-बड़े लोगों के अतिथि के रूप में ही रहता हूँ। उनके लिए मैं एक प्रसिद्ध व्यक्ति हूँ। प्राय: अब देश भर के आदमी मुझे जानते हैं। अत: मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, लोग मुझे खुले दिल से अपने घर में अतिथि बना लेते हैं। शिकागो में भी 'हेल का घर' मेरा केन्द्र है, उनकी पत्नी को मैं 'माँ' कहता हूँ, उनकी कन्याएँ मुझे 'भैया' कहती हैं, ऐसा महापवित्र और दयालु परिवार मैंने दूसरा नहीं देखा। अरे भाई, यदि ऐसा न होता, तो इन पर भगवान की ऐसी कृपा कैसे होती? कितनी दया है इन लोगों में! यदि खबर मिली कि अमुक जगह एक गरीब कष्ट में पड़ा हुआ है, तो बस, ये स्त्री-पुरुष चल पड़ेंगे – उसे भोजन-वस्त्र देने के लिए और फिर उसे किसी काम में लगा देंगे!...

यहाँ जितना भी खाओ, सब हजम हो जाता है। यहाँ कई तरह के फल – केले, सन्तरे, अमरूद, सेव, बादाम, किशमिश, अंगूर – खूब मिलते हैं। इसके अलावा बहुत से फल कैलिफोर्निया से आते हैं। अनन्नास भी बहुत हैं, परन्तु आम-लीची आदि नहीं मिलते। एक तरह का साग है, उसे 'स्पिनाक' (Spinach) कहते हैं। इसे पकाने पर हमारे देश के चौराई के साग जैसा स्वाद आता है और एक-दूसरे तरह का साग, जिसे ये लोग 'एस्पेरेगस' (Asparagus) कहते हैं, जो हमारे यहाँ के ठीक मुलायम 'डेंगो' के डंठल की तरह लगता है, पर उससे हमारे यहाँ की चच्चड़ी नहीं बनायी जा सकती। उड़द की या दूसरी कोई दाल यहाँ नहीं मिलती, यहाँ वाले उसे जानते तक नहीं। खाने में यहाँ भात, पावरोटी ... आदि की विभिन्न किस्में मिलती हैं। यहाँ वालों का खाना फ्रांसीसियों जैसा है। यहाँ दूध मिलेगा, कभी-कभार दही मिलेगा, पर मट्ठा जरूरत से ज्यादा मिलेगा, क्रीम हमेशा हर चीज के साथ दिया जाता है। चाय में, कॉफी में सब तरह के खाने में वही क्रीम – मलाई नहीं – यह कच्चे दूध की बनती है। फिर मक्खन भी है और बर्फ का पानी – जाड़ा हो या गर्मी, दिन हो या रात, जुकाम हो या बुखार – यहाँ बर्फ का पानी खूब मिलता है। ये विज्ञानवेत्ता लोग ठहरे, बर्फ का पानी पीने से जुकाम बढ़ता है, सुनकर हँसते हैं। इनका कहना है कि इसे जितना ही पियो, उतना ही अच्छा है। आइसक्रीम की बात ही न पूछो, बेशुमार और तरह-तरह के आकार की। भगवान की जय हो, नियाग्रा जलप्रपात सात-आठ बार देख चुका। निस्सन्देह बड़ा भव्य है, पर जितना तुमने सुना हैं उतना नहीं। एक दिन जाड़े में हमने 'अरोरा बोरियालिस' (Aurora borealis)* भी देखा। ...

जहाँ तक व्याख्यान आदि का प्रश्न है, मैं उन्हें पहले से लिखकर नहीं देता। केवल एक बार व्याख्यान लिखकर पढ़ा था, जो तुमने छपवाया है। बाकी सब, खड़ा हुआ और कह चला – गुरुदेव मुझे पीछे से प्रेरित करते रहते हैं। कागज-कलम का कोई काम नहीं। एक बार डिट्रॉएट में तीन घंटे लगातार व्याख्यान दिया। कभी-कभी मुझे स्वयं ही आश्चर्य होता है कि 'बेटा, तेरे पेट में इतनी विद्या थी'![२०]

भगवान के लिए बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया है, इसीलिए मेरे मस्तिष्क का पर्दा खुल गया है। यही कारण है कि अब मुझे दर्शन सदृश जटिल विषय पर भाषण देने के लिए सोचना नहीं पड़ता। मान लो, मुझे कल वक्तृता देनी है; तो जो कुछ मैं कहूँगा, उसकी तस्वीर आज रात में एक-पर-एक आँख के सामने से गुजरने लगती है। अगले दिन भाषण में वही सब बोलता हूँ।[२१]

जो लोग अधिक भावुक हैं, नि:सन्देह उनकी कुण्डलिनी शीघ्र ही ऊपर उठ जाती है, परन्तु वह जितने शीघ्र ऊपर जाती है, उतने ही शीघ्र नीचे भी उतर जाती है। और जब उतरती है तो साधक को एकदम गर्त में ले जाकर छोड़ती है।... सामयिक उत्तेजना से उस शक्ति की ऊर्ध्वगति अवश्य हो जाती है, पर स्थायी नहीं होती। निम्नगामी होते समय जीव में प्रबल काम-प्रवृत्ति की वृद्धि होती है। मेरे अमेरिका के भाषण सुनकर सामयिक उत्तेजना से स्त्री-पुरुषों में अनेक का यही भाव हुआ करता था। कोई तो जड़ जैसे हो जाते थे। बाद में मैंने पता लगाया था, उस स्थिति के बाद ही कई लोगों की काम-प्रवृत्ति की अधिकता होती थी। स्थिर ध्यान-धारणा का अभ्यास न होने के कारण ही वैसा होता है।[२२]

अपने भाषणों में दर्शन और धर्म विषयक यूरोपीय शब्दों

* पृथ्वी के उत्तरी भाग में रात के समय (जहाँ लगातार छह महीने तक रात होती है) कभी-कभी आकाश-मण्डल में एक तरह का कम्पमान विद्युत्-आलोक दीख पड़ता है। वह कितने ही आकारों और कितने ही रंगों का होता है। इसी को 'अरोरा बोरियालिस' कहते हैं।

का उपयोग करने पर मुझे एक मित्र ने दोषी ठहराया है। मैं संस्कृत शब्दों का सहर्ष उपयोग करता, मेरे लिए वैसा करना बहुत आसान होता, क्योंकि धर्म-भाव को प्रकट करने के लिए संस्कृत भाषा ही एकमात्र पूर्ण साधन है; पर वह मित्र भूल गया था कि मैं पाश्चात्य श्रोताओं के सामने भाषण दे रहा था। यद्यपि एक भारतीय ईसाई पादरी ने कहा था कि हिन्दू लोग अपने धर्मग्रन्थों का अर्थ भूल गये हैं और पादरी लोगों ने ही उसका अर्थ खोज निकाला है; पादरियों के उस बृहत् समुदाय में मुझे ऐसा एक भी नहीं मिला, जो संस्कृत का एक वाक्य भी समझ सकता – तो भी उनमें से कई ऐसे थे, जिन्होंने वेदों तथा हिन्दू धर्म के अन्य पवित्र ग्रन्थों की निन्दात्मक आलोचना के विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़कर सुनाये ![२३]

डिट्रॉएट, ३० मार्च १८९४ : आगामी ग्रीष्म में यदि मैं लौट नहीं गया, तो श्रीमती बाग्ली का आग्रह मानकर मैं एनिसक्वाम जा सकता हूँ; वहाँ उन्होंने एक सुन्दर मकान ले रखा है। श्रीमती बाग्ली बड़ी आध्यात्मिक महिला हैं और श्री पॉमर एक सुरासक्त व्यक्ति हैं, पर हैं बड़े अच्छे। अधिक क्या लिखूँ? शारीरिक तथा मानसिक, दोनों ही प्रकार से मैं स्वस्थ हूँ। प्रिय बहनो, तुम सबको सतत आनन्द प्राप्त हो। हाँ, श्रीमती शर्मन ने मुझे अनेक वस्तुएँ भेंट की हैं, यथा लेटर-होल्डर, नेल-सेट, एक छोटा-सा थैला आदि। यद्यपि मैंने मना किया, विशेषकर नेल-सेट को लेने से, जिसका सीप का मूँठ बहुत भड़कीला है, पर उन्होंने आग्रह किया और मुझे लेना पड़ा। हालाँकि मेरी समझ में नहीं आता कि यह ब्रश करनेवाला यंत्र मेरे किस काम आयेगा। प्रभु उन सबका कल्याण करें ! उन्होंने मुझे एक सलाह दी – इस अफ्रीकी पोशाक को शिष्ट-समाज में कभी न पहनूँ। अब मैं एक सामाजिक व्यक्ति हो गया हूँ। हे प्रभो, आगे क्या होने वाला है? दीर्घ जीवन में कितने ही विचित्र अनुभव होते हैं।[२४]

न्यूयार्क, ९ अप्रैल १८९४ : मैंने अमेरिका के बहुत से बड़े शहरों में व्याख्यान दिये हैं और यहाँ के भयंकर खर्चों से निपटने के बाद भी भारत लौटने के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है। मेरे यहाँ बहुत से मित्र हैं, जिनमें से कुछ बड़े प्रभावशाली हैं। निस्सन्देह कट्टर पादरी मेरे विरुद्ध हैं और मुझसे लड़ना कठिन होगा – जानकर हर प्रकार से वे मेरी निन्दा करते हैं और मुझे बदनाम करने में भी नहीं हिचकिचाते। मजूमदार इसमें उनकी सहायता कर रहा है। वह द्वेष के मारे पागल हो गया लगता है। उसने इन लोगों से कहा है कि मैं बहुत बड़ा धोखेबाज और धूर्त हूँ। और इधर वह कलकत्ते में कहता फिर रहा है कि मैं अमेरिका में अत्यन्त पापपूर्ण तथा लम्पट जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। प्रभु उसका कल्याण करें। मेरे भाई, बिना विरोध के कोई भी अच्छा काम नहीं हो सकता। जो अन्त तक चेष्टा करते हैं, उन्हीं को सफलता प्राप्त होती है।... मेरा विश्वास है कि जब एक जाति, एक वेद और शान्ति तथा एकता होगी, तभी सत्ययुग (स्वर्णयुग) आयेगा। सत्ययुग का वह विचार ही भारत को पुनरुज्जीवित करेगा। इस पर विश्वास करो।[२५]

शिकागो, वसन्त ऋतु, १८९४ : मजूमदार की कारस्तानी सुनकर बड़ा दुख हुआ। जो दूसरे को धक्के देकर आगे बढ़ना चाहता है, उसका आचरण ऐसा ही होता है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं। वह दस वर्ष पहले यहाँ आया था, तब उसका बड़ा आदर हुआ और खूब सम्मान मिला। अब मेरे पौ बारह हैं। श्रीगुरु की ऐसी इच्छा है, तो मैं क्या करूँ ! इस पर नाराज होना मजूमदार की नादानी है। खैर,... तुम जैसे महात्माओं को चाहिये कि उसकी उपेक्षा करो। हम रामकृष्ण-तनय हैं, उन्होंने अपने हृदय के रुधिर से हमें हृष्ट-पुष्ट किया है। क्या हम कीड़े के काटने से डर जायँ? 'महात्माओं के आचरण असाधारण होते हैं, जिनका कारण बताना सहज नहीं होता; मन्दबुद्धि लोग ऐसे आचरणों की निन्दा किया करते हैं।' (कुमारसम्भव) – आदि वाक्यों का स्मरण करके हम मूर्ख को क्षमा करना। प्रभु की इच्छा है कि इस देश के लोगों में अन्तर्दृष्टि जाग्रत हो। फिर क्या यह किसी के वश की बात है कि उसकी गति को रोक सके? मुझे नाम की जरूरत नहीं – I want to be a voice without a form. (मैं एक निराकार वाणी हो जाना चाहता हूँ।) किसी को मेरा समर्थन करने की जरूरत नहीं।... उनके प्रभाव-विस्तार की गति में बाधा देनेवाला या सहायक होनेवाला मैं कौन हूँ?[२६]

❖ (क्रमशः) ❖

सन्दर्भ-सूची –

१८. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड २, पृ. ३३३; **१९.** वही, खण्ड २, पृ. ३३४-३९; **२०.** वही, खण्ड ३, पृ. ३५२-४; **२१.** वही, खण्ड ८, पृ. २५६; **२२.** वही, खण्ड ६, पृ. २२२; **२३.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. ३७३; **२४.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ. ३४१-२; **२५.** वही, खण्ड २, पृ. ३४२-४३; **२६.** वही, खण्ड ३, पृ. ३५८-५९
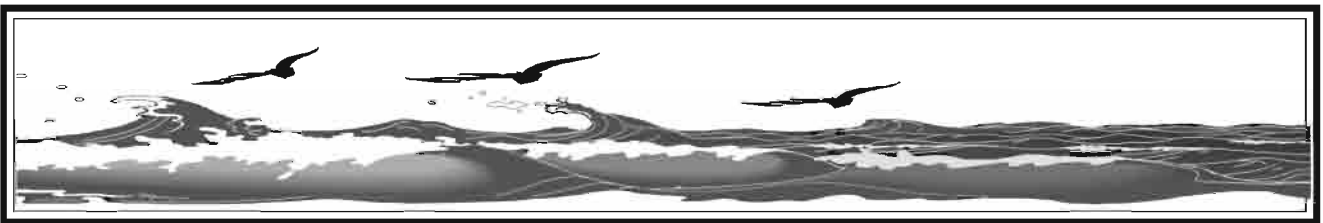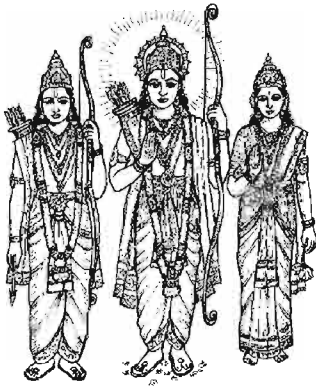
रामराज्य की भूमिका (१/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के प्रांगण में १९८८ ई. में आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती के अवसर पर पण्डितजी ने जो प्रवचन दिये थे, उन्हें 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है। – सं.)

किसी ने मुझसे पूछा – श्रीकृष्ण को देखने के लिये कैसी आँखें चाहिए? गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को केवल अपना रूप ही नहीं दिखाते, अपितु रूप देखने की दृष्टि भी देते हैं। यह बड़े महत्त्व का सूत्र है। भगवान को देखने का ही नहीं, बल्कि देखने की दृष्टि का भी बड़ा महत्त्व है।

भगवान ने पहले दुर्योधन के समक्ष अपना विराट् रूप प्रकट किया और बाद में अर्जुन के सामने भी प्रगट किया। इसमें बिल्कुल एक जैसी बात है। पर दोनों प्रसंगों में बड़ा भेद है। भगवान ने अर्जुन से कहा – इससे पहले मेरा रूप किसी ने देखा ही नहीं था। रामायण में इतने बार विराट् रूप दिखाया गया है कि पढ़कर लगता है कि गीता की यह पंक्ति तो ठीक नहीं लगती है। कौशल्याजी को विराट् रूप का दर्शन हुआ, कागभुशुण्डिजी को भी विराट् रूप का दर्शन हुआ और महाभारत में दुर्योधन की सभा में भी उन्होंने अपना विराट् रूप ही तो प्रगट किया था। परन्तु इनमें अन्तर बस यही है कि दुर्योधन को जब भगवान ने अपना रूप दिखाया तो रूप देखने की अपनी आँखें उसे नहीं दी, परन्तु जब अर्जुन को जब रूप दिखाया, तो रूप देखने के लिये आँखें भी दे दी। आँखें बदल जाने से ही बड़ा अन्तर पड़ गया।

दुर्योधन ने कहा – कृष्ण युधिष्ठिर का पक्षपाती है, इसे बन्दी बना लो। वह उनको बन्दी बनाने चला, परन्तु जब भगवान विराट् रूप में प्रगट हुए, तो कॉपने लगा। विराट् रूप देखकर अर्जुन भी काँपने लगा था और दुर्योधन भी काँपने लगा, उसे भी पसीना आ गया। वह पीछे हट गया। भगवान दुर्योधन की सभा से अन्तर्धान होकर विदुर के घर चले गये। अर्जुन को भगवान ने अपने विराट् रूप द्वारा तत्त्व -ज्ञान दिया और उसने देखा कि सारे योद्धा मरे पड़े हैं। भगवान ने सूत्र दे दिया – अर्जुन, तुम अभिमानी कर्ता बनकर युद्ध मत करो, निमित्त बनकर करो – **मया एव एते निहताः पूर्वम् एव निमित्त-मात्रं भव सव्यसाचिन्।** (गी.११/३३)

तुम इस विराट् रूप द्वारा यह अनुभव करो कि वस्तुत: ये योद्धा तो मेरे द्वारा मारे गये हैं, तुम तो निमित्र मात्र के रूप में संसार के रंगमंच पर मारनेवाले दिखाई दे रहे हो। इस धारणा में तुम दृढ़ हो जाओ।

एक ओर विराट् रूप देखकर अर्जुन को तत्त्वज्ञान होता है, उनके कर्तृत्व का त्याग होता है। और वही विराट् रूप दुर्योधन ने देखा, तो न उसके कर्तृत्व का त्याग हुआ, न बोध हुआ और न भक्ति आई। तो क्या आई? जब कृष्ण अन्तर्धान हो गये, तो उसने तुरन्त कर्ण से कहा – "इस कृष्ण के बारे में और कोई विशेष बात चाहे हो न हो, पर यह इन्द्रजाली पक्का है। ऐसा जादूगर मैंने कभी नहीं देखा था।"

एक सक्षम जादूगर भी अपने को चाहे जैसे दिखा देता है। अब मूल प्रश्न यही है और गीता, रामायण, महाभारत – सबमें सर्वत्र यही प्रश्न उठता है – वे मनुष्य हैं या भगवान? श्रीकृष्ण यदि मनुष्य हैं, तब तो उन्हें दुर्योधन की दृष्टि से ही देखना ठीक है, वे इन्द्रजाली है। श्रीकृष्ण के चरित्र को लेकर लोग यह भी कहते हैं कि वे बड़े चतुर हैं, कूटनीतिज्ञ हैं, आदि। पर यदि आप मूल आधार पर विचार करें, व्यास और अर्जुन की दृष्टि से देखें, तो श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं। क्या आपने गीता के अन्तिम श्लोकों पर ध्यान दिया है? भगवान ने गीता के प्रचार का आदेश देते हुए कहा है कि जो इसका प्रचार करता है, उससे बढ़कर मेरा प्रिय अन्य कोई नहीं है। पर साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया – अर्जुन, कुछ लोगों को गीता मत सुनाना। – किसे? भगवान बोले – जो तपस्या रहित है, जो भक्त नहीं है, उसे मत सुनाओ, पर अन्त में भगवान ने जिस बात पर सर्वाधिक बल दिया, वह है – जो मुझ में असूया (द्वेष) रखते हैं, उन्हें बिल्कुल मत सुनाओ –

इदं ते नातपस्काय ना भक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।। १८/६७

यह बहुत बड़ा सूत्र है और रामायण से इसका बिल्कुल मेल हो जाता है। रामकथा को गोस्वामीजी ने मन्दाकिनी कहा है – **रामकथा मन्दाकिनी**। मन्दाकिनी का प्राकट्य अनुसूयाजी के द्वारा हुआ। उन्होंने अत्रि की प्रसन्नता हेतु गंगा की एक धारा को चित्रकूट में प्रवाहित किया, वही मन्दाकिनी है। तुलसीदास जी कहते हैं – यदि आप चाहते हैं कि आपका अन्त:करण चित्रकूट बने और उसमें रामकथा की गंगा बहे, तो पहले अनुसूया को बुलाइए –

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।। १/३१

अनुसूया को नहीं बुलायेंगे, तो गंगा की धारा प्रवाहित नहीं होगी। अनुसूया का अर्थ है – जिसमें असूया-वृत्ति का अभाव हो। बस, इसे गीता से जोड़ लीजिए। भगवान भी कहते हैं कि मुझसे जो असूया रखते हैं, उन्हें बिल्कुल मत सुनाओ। रामायण में कहा गया – रामकथा मन्दाकिनी है, जो बिना अनुसूया बने नहीं आयेगी। वर्तमान युग असूया-वृत्ति का युग है। अनुसूया की चर्चा करना भी इस युग की धारणा के प्रतिकूल है। असूया-वृत्ति का अर्थ आप जानते होंगे। संस्कृत में इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या है। **परगुणेषु दोष-आविष्करणम्** – दूसरे के गुणों में दोष देखना असूया है।

कुछ लोग दूसरे के दोष देखते हैं। नहीं देखना चाहिए, पर देखा जाता है। ठीक है, यदि हमें दूसरे के दोष में दोष दिखाई दे और उसे देखकर हम अपने जीवन में उन दोषों से बचने के लिए सावधान हो जायँ, तो दोष देखकर भी हमने बुरा नहीं किया। कोई व्यक्ति इधर-उधर देखते हुए चल रहा है और ठोकर खाकर गिर पड़ा। अब एक दृष्टि तो यह है कि उस गिरे हुए व्यक्ति को देखकर तालियाँ बजाकर हँसें – देखो तो, अन्धे की तरह चला जा रहा था; बड़ा अच्छा हुआ, गिर पड़ा! और दूसरा व्यक्ति वह है, जो गिरनेवाले को देखकर सावधान हो जाय – यदि मैं सावधान होकर नहीं चलूँगा, तो मुझे भी ठोकर खाकर गिरना पड़ेगा। यदि हम दूसरे का दोष देखकर हँसते हैं, तो दोष-दर्शन का इससे बढ़कर कोई दुरुपयोग नहीं है। पर दोष देखकर यदि हमारे अन्त:करण में उस दोष से बचने की प्रेरणा आती है, तब तो वह दोष-दर्शन भी उपयोगी है। इसलिए कहा गया – गुणों को इसलिए जानिए कि उनका संग्रह करें और दोषों को इसलिए देखिए कि दोषों का त्याग करें।

तेहि तें कछु गुन दोष बखाने।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ।। १/६/२

जहाँ तक दोष-दर्शन की बात है, उससे सम्बन्धित ये तीन वृत्तियाँ हैं, जो एक-दूसरे के आसपास रहती हैं – मात्सर्य, ईर्ष्या और असूया। **सबसे पहले मात्सर्य आता है, उसके बाद ईर्ष्या आती है और सबसे अन्त में असूया आती है।** मात्सर्य शब्द का अर्थ क्या है? जब दो व्यक्ति चलेंगे, तो उनमें से किसी एक की गति तीव्र होगी और दूसरा उतना तेज नहीं चल सकेगा। यदि कोई अपने से आगे निकल रहा है और यह देखकर बुरा लगे, तो इसी का नाम मात्सर्य है। **मत्तः सरति** – मुझसे आगे बढ़ रहा है – दूसरे को बढ़ते देखकर यही मात्सर्य रूप पहली वृत्ति आती है। इस मात्सर्य का क्या परिणाम होता है? किसी को आगे बढ़ते देख मनुष्य के मन में मात्सर्य आने के बाद, यह वृत्ति आ सकती है कि हम भी अपनी गति बढ़ायेंगे और इसे परास्त करेंगे। आप भी तीव्रगति से बढ़ने लगे, तो दोनों में मात्सर्य की होड़ लगी और दोनों की गति में तीव्रता आई। यहाँ तक तो मात्सर्य भी समाज में व्यक्ति को विकास की दिशा में ले जा सकता है।

पर दुर्भाग्यवश मात्सर्य यहीं तक सीमित नहीं रह जाता। आगे चलकर मात्सर्य ईर्ष्या में और ईर्ष्या असूया में परिणत हो जाती है। जब तक हमारे मन में होड़ लेने की इच्छा है, आगे बढ़ने की इच्छा है, तब तक तो वह मात्सर्य है। पर किसी ने देखा कि इनकी गति तो इतनी तीव्र है कि मैं तो इससे आगे निकल ही नहीं सकूँगा, तो सोचने लगा – अच्छा, आगे नहीं निकल सकते, तो क्यों न पीछे से इनकी टाँग पकड़कर खींच लें, ताकि ये गिर जायँ। यह ईर्ष्या वाली बात है। अब यह वृत्ति आ गई कि मैं नहीं बढ़ सकता, तो आपको भी आगे नहीं बढ़ने दूँगा। मात्सर्य रखनेवाले को दूसरे में विशेषता (गुण) दिखाई देती है, परन्तु ईर्ष्यालु वह विशेषता (गुण) न देखकर दोष देखता है।

रामायण में वर्णन आता है कि समुद्र में एक राक्षसी थी। हनुमानजी जब समुद्र लाँघ रहे थे, तो उसने उन की छाया को पकड़ लिया और उनकी गति रुक गई। हनुमानजी ने उसे पहचान लिया और समुद्र में उतर कर उसे मार डाला। उस राक्षसी का नाम सिंहिका था और वह राहू की माता थी।

राहु मातु माया मलिन
मारी मारुत पूत ।। रामाज्ञा. ५/२/१

राहु की वृत्ति, मात्सर्य की वृत्ति है और सिंहिका ईर्ष्या की वृत्ति है। आपको दोनों में अन्तर मिलेगा। जब समुद्र-मन्थन हुआ और अमृत निकला, तो भगवान मोहिनी के रूप में अमृत बाँटने लगे। राहु समझ गया कि देवताओं को अमृत और दैत्यों को सुरा मिल रही है। उसको लगा – अरे, यह तो बड़े घाटे का सौदा हुआ। हमें भी अमृत मिलना चाहिये। यह मात्सर्य की भावना थी। हम क्यों अमृत से वंचित रहें! उस अमृत को पाने के लिये उसने जो उपाय सोचा, वह उस दैत्य की वृत्ति के अनुकूल था। भगवान विष्णु ही मोहिनी बने हुए थे। राहु ने उन्हें पहचान लिया, परन्तु अन्य दैत्य उन्हें पहचान नहीं सके थे। वह जाकर भगवान से कह सकता था – महाराज, मैंने आपको पहचान लिया है, आप कृपाकर मुझे भी अमृत दे दीजिए। उसकी आँखें पैनी थीं, पर हृदय शुद्ध नहीं था। उसमें भगवान को पहचाने की क्षमता तो थी, पर जानने के बाद उसमें विश्वास का उदय नहीं हुआ। रामायण में बताया गया है – जानने का फल है विश्वास। विश्वास का फल है प्रेम और प्रेम की दृढ़ता का नाम ही भक्ति है –

राम कृपा बिनु सुनु खगराई।
जानि न जाइ राम प्रभुताई ।।
जानें बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई।

जिमि खगपति जल कै चिकनाई ।। ७/८९/६-८

राहु ने जान तो लिया, पर जान लेने के बाद उसका मार्ग बदल गया। उसे विश्वास था कि यदि मैं बता दूँगा, तो मुझे बिल्कुल नहीं देंगे। तब उपाय क्या है? उसने सोचा कि मैं भी देवता बन जाऊँ। लोग इस कला में बड़े निपुण होते हैं। भले ही भीतर से दैत्य हों, पर अपने को देवता के रूप में दिखाना उनकी एक बड़ी चामत्कारिक क्षमता होती है। वह क्षमता राहु में थी। उसने तुरन्त देवता रूप बना लिया और सोचने लगा – कहाँ बैठना ठीक रहेगा? पहले तो सोचा कि बिल्कुल शुरू में बैठ जाऊँ? फिर सोचा – "नहीं, ऐसी भूल करूँगा, तो पकड़ा जाऊँगा। क्योंकि लोग जब परोसने जाते हैं, तो पहले व्यक्ति की ओर विशेष ध्यान जाता है। यदि उन्होंने मुझे ध्यान से देख लिया कि यह नया देवता कहाँ से आ गया, तब तो अमृत नहीं देंगे। इसलिए यहाँ बैठना ठीक नहीं है। परन्तु परोसते-परोसते जब थक जाते हैं, तो अन्त में परोसने वाले का ध्यान उतना नहीं रहता, इसलिए अन्त में बैठ जाऊँ। लेकिन क्या पता, यदि बीच में ही अमृत समाप्त हो जाय। अन्त में यह हो सकता है कि अमृत बचे ही न।" तो उसने निर्णय किया – न आदि में, न अन्त में, मुझे तो ठीक बीचो-बीच में बैठना चाहिए। पुराणों की भाषा बड़ी अनोखी है। बीच में भी बैठने के लिए चुनाव भी उसने सूर्य और चन्द्रमा के बीच की जगह का किया।

पंचांगों आदि में आपने राहु का चित्र देखा होगा। राहु को अन्धकार का रूप मानते हैं। उसका रंग काला है। ग्रहपूजा में भी राहु को काले तिल से बनाया जाता है। अन्धकार प्रकाश के पीछे बैठ गया। यह एक बड़ी समस्या है – अन्धकार ने अपने छिपने के लिए जो जगह चुनी, वह प्रकाश के बीच थी। उसके पीछे वृत्ति यह थी कि दो चमकने वालों के बीच में रहने से मेरी ओर ध्यान ही कहाँ जायेगा! दृष्टि दोनों चमकने वालों पर जायेगी और इसी बीच हम अमृत पा लेंगे। इसलिये वह अन्धकार – सूर्य और चन्द्र के पीछे, प्रकाश के पीछे छिपा हुआ था। ऐसा बहुत बार होता है। चाहे दीपक में देखें, या ऊपर आकाश में देखें, आप जहाँ भी प्रकाश देखेंगे, उसी के पीछे अन्धकार भी रहेगा।

तो राहु – सूर्य और चन्द्रमा के बीच में बैठ गया। भगवान विष्णु आए। राहु ने हड़बड़ी में अपना पग आगे बढ़ाया और मोहिनी ने उसके पात्र में अमृत की एक बूँद दे दी। उसने तत्काल उसे मुँह में डाल लिया। अन्य देवता सोच रहे थे कि सबको मिल जाय, तब एक साथ पीएँगे, पर राहु ने सोचा कि यह लोकाचार का समय नहीं है, सबको मिल जाय इसकी प्रतीक्षा करने का समय नहीं है। न जाने अगले ही क्षण क्या हो जाय! वह हड़बड़ी में सबसे पहले अमृत पी गया। उसकी इस हड़बड़ी के कारण, अस्वाभाविक आचरण के कारण अब सूर्य-चन्द्र का ध्यान उसकी ओर चला गया – अरे, यह कौन हमारे बीच में बैठा हुआ है? अभी तक तो अपने प्रकाश में इस अन्धकार को देख ही नहीं पा रहे थे। समझ गये कि यह कोई देवता नहीं, दैत्य है। उन्होंने तुरन्त भगवान विष्णु से कहा – महाराज, यह क्या हुआ? तब भगवान ने चक्र उठाकर राहु का सिर काट दिया। पर वह अमृत पी चुका था, अतः उसकी मृत्यु नहीं हुई, पर चक्र का प्रहार व्यर्थ नहीं हुआ, राहु दो टुकड़ों में बँट गया।

किसी-किसी देवता ने भगवान से पूछा, "महाराज, आपने पहले तो अमृत दे दिया और बाद में चक्र से सिर काट लिया। या तो अमृत न देते या चक्र न चलाते। अमृत दिया और चक्र भी चलाया, इसका क्या अर्थ है?" भगवान बोले – आप लोगों के बताने के पहले ही मैं पहचान गया था कि यह कौन है। – तो फिर आपने अमृत क्यों दिया? बोले – जिसने मुझे पहचान लिया, वह अपने आप ही अमृत पाने का अधिकारी हो जाता है। यदि कोई बुरा व्यक्ति – किसी वस्तु को जान ले, कोई बड़ी खोज करे, विज्ञान का कोई आविष्कार करे, तो उसके जान लेने का महत्त्व कोई कम नहीं है। जान लेना सब कुछ भले ही न हो, पर जान लेना एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। भगवान बोले – कोई भी मुझे नहीं पहचान पाया, पर इसकी दृष्टि कितनी पैनी थी कि इसने मुझे पहचान लिया। इसीलिये राहु भी पूज्य मान लिया गया। चाहे वह सर्व-सद्गुण-सम्पन्न न रहा हो, पर ईश्वर को पहचानने की क्षमता तो उसमें थी ही। नवग्रह की पूजा में, सूर्य-चन्द्र आदि के साथ राहु भी आज तक पूजा पा रहा है।

देवता बोले – पर आपने चक्र से उसका सिर क्यों काट दिया? भगवान ने कहा – मैं बताना चाहता था कि जो लोग ज्ञानी तो होते हैं, पर विश्वास का अभाव होता है, वे दो टुकड़े में बँटे होते हैं, सिर अलग और घड़ अलग। जो समझते कुछ हैं और करते कुछ हैं, समझ लीजिए कि वे ठीक राहु के प्रतिरूप हैं – मस्तिष्क अलग जा रहा है और घड़ अलग जा रहा है। यही दैत्यवृति है, दैत्य का स्वभाव है। पर कुछ भी हो, वह अमृत पाकर अमर तो हो ही गया, उसकी पूजा तो करनी ही पड़ती है। इतने मात्र से ही ज्ञान की दुर्लभता और उसकी महिमा का बोध होता है कि उसके द्वारा व्यक्ति कितना ऊँचा उठ सकता है।

मात्सर्य का यह एक उपयोग राहु के रूप में हुआ। परन्तु जो राहु-की-माँ सिंहिका है, उसकी वृत्ति क्या है? राहु मारने पर भी नहीं मरा और सिंहिका को हनुमान जी ने मार दिया। क्यों? सिंहिका ईर्ष्या की वृत्ति है। समुद्र में जलचरों की भीड़ है। यदि वह चाहती, तो जलचरों को खाकर अपना पेट भर लेती। पृथ्वी पर भी जन्तुओं की कमी नहीं है। परन्तु इस राक्षसी का नियम था कि जिसको आकाश में उड़ते देखती

थी, उसी की छाया को पकड़ लेती और उसे नीचे खींच लेती थी। जब वह प्राणी नीचे गिरता, तो उसे खा जाती –

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई।।
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिनके परछाहीं।।
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगन चर खाई।। ५/३/१-३

पहचाना आपने? यही ईर्ष्या की वृत्ति है। यह केवल नभचरों को खाती है, जलचरों और थलचरों को नहीं खाती। ईर्ष्यालु लोग अपने बराबरीवालों को खाना पसन्द नहीं करते, जो जरा ऊँचे उड़ते हुए दिखाई दें, उन्हीं को खाने की इच्छा होती है, उन्हीं को नीचे गिरावें – अच्छा, खूब ऊँचे उड़ रहा है? जरा इसको नीचे खींचें। तुम्हारी यह हिम्मत – मैं यहाँ नीचे और तुम उड़े चले जा रहे हो?

छाया पकड़ लेने का क्या तात्पर्य है? ईर्ष्यालु सदा दोष देखेगा। मात्सर्य वाले को गुण-दर्शन होगा, परन्तु ईष्यालु व्यक्ति जब देखेगा, तो छाया – दोष ही देखेगा। हनुमानजी के बारे में सिंहिका कहती है कि भले ही शरीर सोने के जैसा हो – **हेम-शैलाभ-देहम्**, पर छाया तो बड़ी काली है। यही ईष्यालु का स्वभाव है। किसी को देखेगा तो उसकी दृष्टि गुणों पर जायेगी ही नहीं, उसके दोषों पर ही जायेगी। वह दोषों को ही पकड़कर – दोषों का प्रचार करके उसे नीचे गिराने की चेष्टा करेगा। सिंहिका, हनुमानजी की छाया को भी पकड़ने की भूल कर बैठी और छाया पकड़ने में उससे थोड़ी भूल हो गई। अधिकांश गुणवानों की छाया अभिमान की होती है और उस अभिमान की छाया को ही पकड़कर व्यक्ति को नीचे गिराया जा सकता है। गुणी को जहाँ गुणाभिमान हुआ, वहीं उस छाया को पकड़ लीजिए, वह नीचे गिरे बिना नहीं रहेगा। हनुमानजी में भी छाया थी, और वह बड़ी लम्बी चौड़ी छाया थी। हनुमानजी में अभिमान था या नहीं? बड़ा अभिमान था, पर वह गुणाभिमान नहीं था। कौन-सा अभिमान था? – मैं श्रीराम का दास हूँ और श्रीराम मेरे स्वामी हैं –

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे।। ३/१०/२१

जब हनुमानजी यह घोषणा करते हैं, तो लगता है कि यह तो अभिमान की वाणी है। पर नहीं, उनमें दासत्व का अभिमान है – मैं राम का दास हूँ, क्या लंका में मुझे कोई परास्त कर सकता है?

दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्य-कृष्ट-कर्मणा।।

हनुमानजी में यही छाया थी और इसे पकड़ने का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने सिंहिका का विनाश ही कर दिया। जो व्यक्ति दूसरों के गुण देखकर स्वयं गुणी बनने की न चेष्टा करे, केवल दूसरे का दोष ही देखता फिरे, वह ईष्यालु है और उस वृत्ति का विनाश होना चाहिए। पर असूया तो इससे भी आगे है। मात्सर्य वाले को गुण दिखाई दिया, गुण में होड़ हुई। ईर्ष्यालु को दोष दिखाई पड़ा, पर असूया का अर्थ क्या है? जो दूसरे के गुण को भी दोष के रूप मे देखें वह असूया है – **परगुणेषु दोष-आविष्करणम् असूयः।**

सबसे घातक यदि कोई वृत्ति है, तो वह असूया-वृत्ति है। इससे बढ़कर हानिकारक कोई वृत्ति हो ही नहीं सकती। यदि आप दोष-में-दोष निकालें तो कोई बात भी है, पर यदि आप गुणों में भी बड़ी आसानी से दोष निकाल सकते हैं, तो यह असूया की वृत्ति है। रावण के हृदय में रामकथा की मन्दाकिनी क्यों नहीं बही? हनुमानजी ने बड़ी चेष्टा की, खूब कथा सुनाई, पर रामकथा-मन्दाकिनी रावण के हृदय में नहीं बही। इसलिये कि रावण असूया-वृत्ति का साकार रूप था। मात्सर्य और ईर्ष्या से भी आगे बढ़कर असूया की पराकाष्ठा। असूया की वृत्ति का दृष्टान्त देख लीजिए।

भगवान श्रीराम ने अयोध्या का राज्य त्याग किया। उनके त्याग की प्रशंसा की जाती है। छोटे भाई के लिए या पिता के वाक्यों की रक्षा के लिए उन्होंने इतना बड़ा त्याग किया। यह श्रीराम का महान् गुण है, लेकिन रावण की व्याख्या क्या है? श्रीराम के चरित-विषयक जो प्रश्न उठाये जाते हैं, वे कभी-कभी मन को व्यथित करते हैं। बालि को मारने में दोष निकालना अस्वाभाविक नहीं है, सीताजी के त्याग का प्रसंग भी सचमुच बड़ा दुखदाई है, लेकिन भगवान राम ने अयोध्या का राज्य छोड़ दिया, यह तो कोई बात ऐसी नहीं जिस पर विवाद किया जाय। परन्तु रावण अपनी असूया की आँखों से देखकर जो व्याख्या करता है, उसे भी सुन लीजिए। रामकथा को समझने के लिये उसकी व्याख्या करने में आप स्वतंत्र हैं, पर यदि आप असूया की दृष्टि से देखेंगे, तो भूल होगी। रावण ने कहा – जानते हो, ये वन क्यों आए हैं? पिता समझ गया कि लड़का किसी काम का नहीं है। इसमें न कोई योग्यता है, न गुण है; यह राजा बनने योग्य नहीं है, इसलिए इसे देश-निकाला दे दिया –

अगुन अमान जानि तेहि
दीन्ह पिता बनबास।। ६/३१ क

असूया-वृत्ति जब बढ़ जाती है, तो व्यक्ति को शुद्ध गुण में भी दोष दीखने लगता है। आजकल रामायण का ऐसा कोई भी प्रसंग नहीं, जिस पर प्रश्न न उठता हो। हर प्रसंग की उसकी उल्टी व्याख्या करके प्रश्न किए जाते हैं।

रावण बड़ा बुद्धिमान और पण्डित तो था ही, उसने तर्क भी प्रस्तुत किया। कोई बोला – नहीं, वे तो राज्य छोड़कर आए हैं। रावण ने कहा – यह झूठा प्रचार है। तुम लोगों ने

बस सुनकर मान लिया। परन्तु मैंने तो सोच-विचारकर देख लिया। – क्या? बोला – तुम लोग कैसे मूर्ख हो ! जो सोने के मृग का लोभ नहीं छोड़ पाया, वह क्या राज्य का लोभ छोड़ सकता है? तर्क तो बिल्कुल ठीक है। तर्क में कहीं कोई कमी नहीं है। बोले – चारों ओर तो यही बात फैली हुई है। रावण बोला, "जिससे छीना जाता है, वह तो यही प्रचार करता है कि हमने त्याग दिया है। त्यागपत्र दे दिया है। राम ने छोड़ा-वोड़ा कुछ नहीं है, वह तो एक लोभी राजकुमार है। सोने के मृग के लोभ में उसने पत्नी को गवाँ दिया।"

राम का चरित्र ऐसा है कि इसमें आप असूया-वृत्ति से सहज ही दोष निकाल सकते हैं। परन्तु गोस्वामीजी कहते हैं कि यदि अपने अन्त:करण को अगर चित्रकूट बनाना है और रामकथा की मन्दाकिनी बहानी है, तो अपने अन्त:करण में पहले अत्रिप्रिया अनुसूया को बुलाइए –

अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ।।

जब आप अनुसूया-वृत्ति से रामकथा पर चिन्तन करेंगे, तो आपका अन्त:करण चित्रकूट हो जायगा और उस चित्रकूट में भगवान श्रीराम और सीताजी विहार करेंगे।

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ।। १/३१

गोस्वामीजी ने तीन सूत्र दे दिए। रामकथा मन्दाकिनी हैं, चित्रकूट चित्त है और प्रेम वन है। सूत्र यह है कि जब हम असूया-वृत्ति से रहित होकर, प्रेमयुक्त और अचंचल चित्त से कथा-श्रवण करते हैं, तो हमारा हृदय ही चित्रकूट बन जाता है और उसमें भगवान विहार करने लगते हैं।

यदि आपमें सचमुच असूया-वृत्ति ही हो, गुणों में भी दोष देखने की वृत्ति हो, तो मेरे पास उसका कोई समाधान नहीं है। परन्तु जैसा संशय पार्वती के मन में था, जैसा संशय गरुड़जी के मन में था और जैसा संशय भरद्वाज मुनि के मन में था, वैसा संशय नि:सन्देह बहुत कल्याणकारी है। रामकथा इन्हीं संशयों और इन्हीं प्रश्नों के निराकरण करने के लिए लिखी गई है। जब किसी कवि से पूछा गया कि कृष्ण को देखने के लिए कौन-सी आँखें चाहिए। तो इस पर कवि ने जो उत्तर दिया, वह बड़ा साहित्यिक है और अत्यन्त मधुर भी है। कवि ने कहा – घनश्याम की माधुरी मूर्ति देखने के लिये तो सूर की अन्धी आँखें ही चाहिए –

देखन को घनश्याम की मूरति,
चाहिए सूर की आँधरी आँखें ।।

बड़ा विचित्र व्यंग्य है। अन्धी आँखों से कोई देखे, पर इसमें व्यंग्य यह है कि सूर तो वही है, जिसने अन्धे होकर भी श्रीकृष्ण के रूप को देखा। इस अन्धे शब्द को आप चाहे जितने व्यापक अर्थों में ले सकते हैं।

श्रीराम को देखने और उन्हें ठीक-ठीक समझने के लिये उन्हें तुलसी की आँखों से देखना होगा। पहले हम समझ लें कि तुलसी के राम साक्षात् ईश्वर हैं। बस, यही वह मूल आधार है, जिस पर सारे प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए। साक्षात् ईश्वर होते हुए भी, जब वे अवतार लेते हैं, तो मनुष्य के रूप में लेते हैं। रामायण में इसी बात पर विशेष बल दिया गया है। तात्पर्य यह कि ईश्वर होते हुए भी जब उन्होंने संसार में व्यवहार किया, तो उन्होंने ईश्वर के रूप में नहीं, अपितु मनुष्य के रूप में किया।

रामराज्य के सन्दर्भ में भी यही सूत्र मिलेगा। रामराज्य का क्या अर्थ हुआ? यदि राम ईश्वर हैं, तो रामराज्य का अर्थ है – ईश्वर का राज्य। बस, केवल यही ले लीजिए। इस दृष्टि से विचार करके देखें कि ईश्वर का राज्य बनाने की आवश्यकता है भी या नहीं? ईश्वर तो राजा है ही, परन्तु हम लोगों ने ईश्वर की वस्तुओं पर ऐसा कब्जा कर रखा है कि हमीं राजा बन बैठे हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि ईश्वर यदि अपनी भूमि खोजने के लिए आये, तो पूरे देश में उसे कहीं थोड़ी-सी भी भूमि नहीं मिलेगी, जिसे वह अपना कह सके। सब पर किसी-न-किसी का नाम चढ़ा हुआ है।

रामराज्य बनाने का सामान्य अर्थ है कि राम एक अच्छे व्यक्ति हैं और उनके राजा बनने पर रामराज्य होगा। परन्तु गोस्वामीजी की दृष्टि है कि राम साक्षात् ईश्वर हैं। वस्तुत: राज्य तो ईश्वर का ही है। भरतजी ने रामराज्य का जो मूल तत्त्व-चिन्तन दिया, वह यही था।

गुरु वशिष्ठ ने दोनों ही अवसरों पर परम्परा की दुहाई दी – श्रीराम को राज्य देना था, तो बोले, "सूर्यवंश की परम्परा है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राजसिंहासन पर बैठता है और छोटा भाई सेवा करता है। राज्य लेने में संकोच मत करो।" फिर जब ज्येष्ठ पुत्र वन चला गया, तो गुरुजी ने तर्क बदल दिया और भरतजी से कहा – पिता जिसे दे वही राजतिलक पाता है –

जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ।। २/१७४/३

जिसकी वस्तु है, वह जिसे भी दे दे, उसी की होती है। तुम्हारे पिता अयोध्या के स्वामी थे, उन्होंने राज्य तुम्हें दिया, राम को दिया होता तो राम का राज्य होता, तुम्हें दिया तो तुम्हारा राज्य हो गया। भरतजी चाहते, तो इस तर्क को स्वीकार कर लेते। पर वे बोले – गुरुदेव, यदि कोई व्यक्ति कोई वस्तु दे, तो लिया जा सकता है, पर लेने के पहले यह जरूर पता लगा लेना चाहिए कि वस्तु इन्हीं की है या किसी अन्य की वस्तु दे रहे हैं? यदि कोई आपको नगर में घुमाने के लिये ले जाय और सबसे बड़ा मकान दिखाकर कहे कि 'लीजिए, यह मकान मैं आपको उपहार में देता हूँ' और 'यह मकान इन्हीं का है कि किसी दूसरे का' इसका पता लगाये

बिना ही यदि आप उस पर अधिकार लेने पहुँच गये, तो क्या स्थिति होगी ! श्रीभरत बोले – रामराज्य का मूल चिन्तन यही है। पिताजी के चिन्तन में यह भूल थी कि राज्य उनका है।

भरतजी और दशरथजी के चिन्तन में अन्तर क्या है? महाराजा दशरथ भी रामराज्य बनाना चाहते थे और भरत यह बताना चाहते थे कि राज्य तो राम का ही है। इस रामराज्य में प्रमुख भूमिका भरत की ही है। पर दोनों में सूत्रात्मक अन्तर क्या है? दशरथ को श्रीराम का ईश्वरत्व दिखाई नहीं देता। उनकी दृष्टि में – उनके राम बड़े योग्य पुत्र हैं, अनेक सद्गुणों से सम्पन्न हैं। इसीलिए उन्होंने कल्पना की कि 'मैं राम को सिहांसन पर बैठाऊँगा और रामराज्य बनाऊँगा।'

रामराज्य बनेगा – यह उनके चिन्तन का गुण भी है और दोष भी। श्रीभरत का चिन्तन यह था कि राज्य तो वस्तुत: पिताजी का था ही नहीं – वह तो पिताजी को अज से मिला, अज को रघु से मिला और रघु को दिलीप से मिला था। इन लोगों को राज्य मिला था। वस्तुत: सच्चे अर्थों में तो सारे संसार के राज्य का एकमात्र स्वामी ईश्वर ही है –

संपति सब रघुपति कै आही ।। २/१८५/३

इसीलिए रामराज्य का अर्थ राम को सिंहासन पर बैठाकर रामराज्य बनाना नहीं है। करना बस इतना ही है कि हम उनका सिंहासन छोड़ दें, उनके सिंहासन पर हम न बैठें। भरतजी ने कहा कि आप लोग उनका सिंहासन छीनकर उस पर बैठने या किसी को बैठाने जा रहे हैं। ईश्वर के सिंहासन पर जब व्यक्ति अपने अहंकार को स्थापित करके अपने स्वामित्व का दावा करता है, तो वह रामराज्य के स्थान पर अभिमान का राज्य बन जाता है। परन्तु जब हमारे अत:करण में इस सत्य का भान होता है कि राम का अर्थ तो साक्षात् ईश्वर है और जब संसार ईश्वर का ही है, ईश्वर ही हमारे हृदय में विराजमान हैं, तो अपने हृदय के सिंहासन पर हम अपने अभिमान को न बिठावें। तो रामराज्य का जो दार्शनिक पक्ष है – ईश्वरीय राज्य। हमारे जीवन के जो दुर्गुण हैं, उनके कारण ही हम उस राज्य से दूर हैं।

इसके बाद श्रीराम ने दूसरा पक्ष प्रस्तुत किया। श्रीराम साक्षात् ईश्वर हैं, लेकिन उन्होंने ईश्वर की पद्धति से नहीं, मानवीय पद्धति से रामराज्य बनाया। महाराज दशरथ श्रीराम को सिंहासन पर बैठाना चाहते थे, दूसरे दिन सिंहासन पर बैठ जाते, घोषणा हो जाती कि रामराज्य बन गया। पर इतनी विपत्तियाँ, इतनी बाधाएँ और इतनी समस्याएँ? भगवान राम ने जीवन का दूसरा पक्ष प्रगट किया। ईश्वर होते हुए भी वे ईश्वर के रूप में रामराज्य की स्थापना नहीं करते। उस राज्य की स्थापना के लिये वे एक व्यक्ति के रूप में अपने आचरण के द्वारा बताना चाहते हैं कि सच्चे अर्थों में रामराज्य की स्थापना कितना कठिन है। यह अत्यन्त सरल है और अत्यन्त कठिन भी है। सब कुछ ईश्वर का है – यह समझ लेना बड़ा सरल है, परन्तु रूपायित करना इतना कठिन है, इसमें बड़े विघ्न हैं, बड़ी समस्याएँ हैं और उन समस्याओं का समाधान करने में चौदह वर्ष लगे। चौदह वर्ष के बाद ही लोगों को यह बोध हुआ कि अब रामराज्य बन चुका है।

ये दो दृष्टियाँ हैं – एक तो हम श्रीराम का ईश्वरत्व देख कर उस दृष्टि से रामराज्य पर विचार करें। और दूसरा उन्होंने मनुष्य के रूप में अपने चरित्र के द्वारा किस रूप में रामराज्य की स्थापना की, उसके मार्ग में क्या-क्या समस्याएँ आईं, उनका समाधान उन्होंने कैसे किया – इसी को आधार बनाकर आगे हम चरित्रात्मक प्रसंग प्रारम्भ करेंगे। ❖ **(क्रमश:)** ❖

रत्नाकर से वाल्मीकि

मन्मथनाथ वन्द्योपाध्याय

कृत्तिवास के बँगला रामायण में ऐसी कई बातें हैं, जो मूल वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलतीं। वे सारी बातें या तो उनकी अपनी कल्पना से उद्भूत हैं अथवा किसी अन्य स्थान से लेकर उसे अभिनव रूप में प्रस्तुत किया गया है। महर्षि वाल्मीकि के पूर्व-जीवन के प्रसंग में वे बताते हैं –

वाल्मीकि अपने पूर्व जीवन में च्यवन के पुत्र रत्नाकर थे और डकैती के द्वारा अपने परिवार का भरण-पोषण किया करते थे। वाल्मीकि का नाम सुनते ही, जिन लम्बे श्वेत जटा-जूट तथा दाढ़ी-मूँछों से सुशोभित मुख-मण्डल, चन्दन-चर्चित ललाट, सात्त्विक ज्योतिपुंज, सौम्यमूर्ति जिन ऋषिश्रेष्ठ का चित्र हमारे मानस-पटल पर उभर आता है; उसकी जगह हमें अपने मन में लाना होगा – कन्धे पर लट्ठ धारण किये, विकट दिखनेवाले एक डकैत का चित्र। मुनिकुल में उत्पन्न दस्यु रत्नाकर एक बार लूटने के लिये किसी अन्य यात्री को न पाकर पथिक-रूप धारी ब्रह्माजी तथा नारद पर अपनी लाठी चलाने को प्रस्तुत हुए। परन्तु इस बार उनका पाला किसी ऐरे-गैरे से नहीं पड़ा था – उनके हाथ की लाठी हाथ में ही रह गयी और यात्रियों के स्थान पर हतबुद्धि डाकू को ही किं-कर्तव्य-विमूढ़ रह जाना पड़ा।

मृदु हास्य के साथ ब्रह्मा ने पूछा, ''भाई, हमें क्यों मारते हो? हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'' डाकू बोला, ''तुम भला मेरा क्या बिगाड़ोगे? तुम लोगों को मारकर मैं तुम्हारा सब कुछ लूट लूँगा – क्या तुम नहीं जानते कि तुम लोगों के साथ मेरा चिर काल से यही सम्बन्ध चला आ रहा है?''

ब्रह्मा ने कहा, ''नहीं जानता भाई, जरा तुम्हीं बता दो कि हम लोगों के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ने की तुम्हें क्या जरूरत है?''

डाकू बोला, ''जरूरत? मूर्ख, पूछता है कि जरूरत क्या है! तुम्हारे घर में माँ-बाप, पत्नी-पुत्र नहीं हैं क्या? बड़े अभागे दिखते हो, तीनों लोकों में तुम्हारा अपना कोई भी नहीं है? नहीं तो तुम ऐसी बातें ही भला क्यों करते?''

ब्रह्मा ने कहा, ''ओह, समझ गया, तो तुमने अपने परिवार के पालन-पोषण के लिये ऐसी व्यवस्था की है। साधु! साधु! निःसन्देह तुम्हारा उद्देश्य महान् है। परन्तु एक बात है – लोगों की हत्या, दूसरों का धन लूटना आदि कार्य तो अत्यन्त गर्हित माने जाते है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो ये महापाप हैं, यह बात तो तुम्हें मालूम है न?''

डाकू – ''हो भी तो क्या?''

ब्रह्मा – ''बात यह है कि इन सबका दण्ड तो तुम्हें ही भोगना होगा, यह तो तुम्हें अवश्य मालूम होगा!''

डाकू – ''क्यों? मैं क्यों इन सबका दण्ड भोगूँगा?''

ब्रह्मा – ''तो फिर तुम्हारी जगह पर कौन भोगेगा?''

डाकू – ''क्यों? जिन लोगों के लिये यह सब करता हूँ, वे ही भोगेंगे – क्या इतना भी नहीं समझते? तुम्हारी बुद्धि पर बलिहारी जाता हूँ!''

ब्रह्मा – ''अच्छा, इतना नाराज क्यों होते हो भाई? क्या तुमने उन लोगों से पूछ लिया है? न पूछा हो, तो जरा एक बार जाकर पूछ क्यों नहीं आते!''

डाकू – ''अच्छी बात है, मैं उधर पूछने जाऊँ और इधर तुम लोग खिसक पड़ो! यही बात है न? बड़े चालाक हो!''

ब्रह्मा – ''अरे भाई, इतना डरते क्यों हो? हम तुम्हें वचन देते हैं कि नहीं भागेंगे – और यदि जाना चाहते, तो तुम्हारे सामने ही चले जाते। वह क्षमता भी हम लोगों में है। अब जल्दी से जाकर पूछ आओ, तब तक हम लोग इस वृक्ष के नीचे बैठे हैं, तुम्हारे आने तक नहीं उठेंगे।''

यह कहकर ब्रह्मा तथा नारद उस वृक्ष के नीचे बैठ गये।

दस्यु रत्नाकर ने देखा कि इनकी भागने की कोई सम्भावना नहीं है, अतः वह बड़े निश्चिन्त मन से उनका प्रश्न पूछने अपने घर की ओर चला। इसके बाद किस प्रकार उसके पिता, माता, पत्नी आदि सभी ने एक-एक करके उसके प्रश्न का निर्ममता के साथ जो अप्रत्याशित उत्तर दिया और उसके पापों के फल में हिस्सा बँटाने से साफ इन्कार कर दिया, यह कथा सर्वविदित है।

वह प्रश्न – घर जाते हुए रत्नाकर को जितना सीधा और सरल प्रतीत हो रहा था, अब घर से लौटते समय उतना ही जटिल तथा कठोर प्रतीत हो रहा था। ''मेरे इन दुष्कर्मों का फल कौन लेगा? किसके लिये मैंने इतने सारे मनुष्यों की हत्या की? अब मेरा क्या होगा?'' – ऐसा ही एक अस्पष्ट, अव्यक्त आर्तनाद उनके प्राणों के मर्मस्थल में गूँजते हुए उसमें हलचल मचा रहा था।

रत्नाकर जब सिर झुकाए लौट आये, तो चेहरा देखते ही ब्रह्मा तथा नारद समझ गये कि दवा का असर हुआ है।

ब्रह्माजी ने ज्योंही पूछा, ''क्यों भाई, क्या उत्तर मिला?'' त्योंही रत्नाकर उनके पाँवों से लिपटकर बोले, ''प्रभो, अब मेरी चेतना जाग गयी है। मैं समझ गया हूँ कि आप लोग

सामान्य मनुष्य नहीं हैं, मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ! आप लोगों ने मेरे हृदय में जिस अन्तर्दाह की आग जला दी है, उसे बुझाने की व्यवस्था भी अब आप लोगों को ही करनी होगी – मैं आप लोगों को नहीं छोड़ सकता !'' इतना कह कर वह उनके पाँवों से लिपटकर करुण क्रन्दन करने लगा ।

इसके बाद ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु के जल से उसे स्नान कराने के बाद उसके कानों में राममंत्र प्रदान किया । बहुत प्रयास करने के बाद ही रत्नाकर उस नाम का उच्चारण करने में समर्थ हुआ । ''जब तक हम फिर लौटकर नहीं आ जाते तब तक तन्मय होकर इसी महामंत्र का जप करते रहो'' – कहकर पिता-पुत्र दोनों अन्तर्धान हो गये ।

अब रत्नाकर उस रामनाम रूपी महामंत्र का जप करने बैठे । वे घर-बार की चिन्ता छोड़कर, संसार के चिन्ता को भूलकर पूरे जी-जान के साथ भगवान में चित्त लगाकर एकाग्र मन से उस महामंत्र का जप करने लगे । पहले पाप-मुक्ति की कामना हुई और उसके बाद आन्तरिक वैराग्य होने से आशा, आकांक्षा, स्मृति आदि सब कुछ मन से दूर हो गये; बच गया केवल मन और रामनाम । इसके बाद मन-बुद्धि-चेतना, अन्तर्जगत्-बहिर्जगत्, वर्तमान-भूत-भविष्य, सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि सबका उस रामनाम में ही लोप हो गया ।

इसी प्रकार अनेक वर्ष बीत गये । इसके बाद ब्रह्माजी एक बार फिर वहाँ पधारे और देखने लगे कि रत्नाकर कहाँ है और वह वृक्ष भी कहाँ है, जिसके नीचे उन्होंने बैठकर उसे जप आरम्भ करते देखा था । उस स्थान पर अब कुछ भी नहीं बचा था – उसकी जगह पर वहाँ खड़ा था वल्मीक का एक स्तूप और उसी ओर से आ रही है – कभी न लुप्त होनेवाले उसी रामनाम की ध्वनि । जल-स्थल, आकाश-वायु, अणु-परमाणु – समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड मानो उसी रामनाम से परिपूर्ण हो गया था । आज मानो कोई उनकी सृष्टि के समस्त तारों को रामनाम के सुर में गूँथकर एक मर्मस्पर्शी मधुर झंकार उत्पन्न कर रहा था । ब्रह्माजी क्षण भर के लिये स्वयं को भूलकर उस राम के समुद्र में निमज्जित हो गये । इसके बाद उन्होंने आत्मस्थ होकर विशेष खोज करने पर जाना कि रामनाम का वह दिव्य संगीत उस वल्मीक-स्तूप से ही निकल रहा है । उन्होंने इन्द्रदेव को बुलाकर कई दिनों तक वर्षा करायी, जिसके फलस्वरूप स्तूप की मिट्टी बह जाने से महामंत्र का वह केन्द्र बाहर निकल आया ।

उन्होंने देखा कि रत्नाकर का शरीर कंकाल के समान हो गया है, परन्तु उसी के भीतर से दिव्य ज्योति विखर रही है । मानो तपस्या की आग में तपकर सोने का खोट, मल, मिट्टी आदि सब निकल जाने के बाद विशुद्ध सोने की आभा बाहर आ रही थी । उसी के अन्तस्थल से वह रामनाम नि:सृत हो रहा था । उसमें लेशमात्र भी सामान्य चेतना न होने के कारण चैतन्य-ज्ञान उस महामंत्र में लीन हो चुका था और प्रतिध्वनित हो रहा था केवल वही चैतन्यमय ''राम-राम-राम'' ।

''उठो वत्स !'' कहते हुए ब्रह्मा ने उनका स्पर्श किया । ब्रह्माजी के स्पर्श से उस देह में पुन: चेतना आ गयी । रत्नाकर ने उठकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और बोला, ''प्रभो, आपने वह क्या मंत्र दिया था ! देखिये, उस मंत्र के बल से मैं क्या से क्या हो गया !'' इतना कहकर वे प्रेमाश्रु से डबडबाये हुए नेत्रों के साथ पुन: उसी अमृतमय नाम का उच्चारण करने लगे ।

''वत्स, मैंने तुम्हें सार्थक राममंत्र दिया था – तुम्हारे द्वारा ही तीनों लोकों में रामनाम का प्रचार होगा और एकमात्र तुम्हीं श्री रामलीला का वर्णन करने के उपयुक्त व्यक्ति हो । नारद तुम्हें उस लीला का आभास प्रदान करेंगे ।'' इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये ।

इसके बाद क्रौंच पक्षी के जोड़े का प्रसंग आता है । यह घटना मूल वाल्मीकि रामायण में भी वर्णित हुई है ।

निर्दय बहेलिये द्वारा सहसा क्रौंच पक्षी का वध देखकर मुनिवर का हृदय वाणविद्ध पक्षी के समान ही क्षत-विक्षत और वेदना से परिपूर्ण हो उठा । उस वेदना की तीव्र झंकृति ने एक अज्ञात अभूतपूर्व संगीत के सुर में उनकी हृदय-वीणा के कुछ तारों को झंकृत कर डाला । इसके फलस्वरूप उनके मुख से अनजाने ही अनुष्टुप छन्द में आबद्ध वह विख्यात श्लोक निकल पड़ा – **मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।***

उसी समय नारद ने आकर, पवित्र रामायण को उसी छन्द में ग्रथित करने का उन्हें उपदेश दिया और रामायण की कथा का आभास देकर अन्तर्धान हो गये ।

इसके बाद नारदजी के उपदेशानुसार उन्होंने रामायण की रचना की । नारद उन्हें बता गये थे कि भगवान के श्रीराम के रूप में अवतार लेने में अब भी साठ हजार वर्ष की देरी है, पर तुम अभी से तुम उनकी चरित-कथा के रूप में जो कुछ लिखकर रखोगे, वे आकर उसी के अनुसार लीलाएँ करेंगे ।

❑❑❑

* (भावार्थ) हे निषाद, तुमने काम-मोहित क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक की अकारण ही हत्या कर डाली, तुम्हें कभी शान्ति न मिले ।

कर्मयोग – एक चिन्तन (८)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन आश्रम, राजकोट, गुजरात में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है।)

कर्मयोग का प्रथम सूत्र गीता के दूसरे अध्याय के ३८ वें श्लोक में हैं। कैसे कर्म करें?

सुख दुःखे समेकृत्वा लाभा लाभौ जया जयौ ।
ततोयुद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्यस्यसि ।। २.३८

हे अर्जुन, सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझ कर युद्ध करो, कर्म करो, तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

मान लीजिये गर्मी के दिन हैं। बहुत पसीना निकल रहा है और कोई आकर कहे कि महाराज अभी हम रिलीफ वर्क में नहीं जायेंगे। गर्मी के दिन में गाय को चारा-पानी नहीं मिल रहा है। वहाँ रिलीफ करना है। यह व्यक्ति कहता है, हमको गर्मी से कष्ट हो रहा है। मैं अभी रिलीफ नहीं करूँगा। हम ठंड और बरसात के दिन में करेंगे। तब तक तो वे गायें बिना घास-पानी के मर गयी रहेंगी। इसलिये चाहे मुझे सुख हो या दु:ख हो, मुझे रामकृष्ण मिशन के संन्यासी- ब्रह्मचारी होने के नाते, आदेश मिला है कि गर्मी में वहाँ सूखा पड़ा है, पशुओं को कष्ट हो रहा है, जाकर वहाँ रिलीफ करो, तो हम अवश्य वहाँ जाकर उन पशुओं को घास खिलायेंगे और पानी देंगे। भले ही हमें घास लाने के लिए खुली गाड़ी में, या छकड़े में पचीस-तीस मिनट जाने को और उतना ही समय आने को लगे, उस धूप में हमें कष्ट हो। हमें सुख-दु:ख को समान समझकर गोमाता को समय पर दाना-पानी देना है, उनकी सेवा करना, चाहे उसमें कितना भी कष्ट हो।

अब दूसरी बात है लाभ-हानि में समचित्त रहना। सुख-दु:ख को तुलनात्मक दृष्टि से सहना सहज है, क्योंकि इसका शरीर से ज्यादा सम्बन्ध आता है। दूसरी बात अधिक कठिन है। भगवान कहते हैं – लाभ और हानि को, जय और पराजय को भी समान रूप से देखो। जैसे गायों को पानी, खाना देने से मुझे लाभ होगा या हानि होगी इसकी चिन्ता न करते हुये कर्म करना चाहिए। यदि हम इसका जीवन में अभ्यास करेंगे, तो क्या होगा? भगवान कहते हैं – **इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः** – जिसका मन समभाव में स्थित है, वह जीवित रहते हुये ही, सम्पूर्ण संसार को जीत लेता है।

हे पार्थ यदि तुम साम्यता में स्थित हो जाओगे, तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा – **नैवं पापं अवाप्यस्यसि ।**

जिस मुहूर्त में हम सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान कर लेते हैं, तो हमारी कर्ताबुद्धि समाप्त हो जाती है और हमारा मन समता में स्थित हो जाता है। ईश्वर की सबसे श्रेष्ठ उपासना क्या है? अच्युत भगवान की सर्वश्रेष्ठ उपासना है समता – **समत्वं आराधनम् अच्युतस्य** ।

कर्मों के फल से बचने का एक मात्र उपाय है कि कर्मों के फल की दिशा को अपने बदले ईश्वर की ओर बदलते जायँ, तभी हम कर्म के फल से मुक्त हो सकते हैं।

अगर फल मुझे नहीं मिलने वाला है या मुझे फल की आशा नहीं रखनी है, तो स्वभाविक रूप से मनुष्य के मन में ये बात आती है कि फिर मैं कर्म क्यों करूँ?

भगवान श्रीकृष्ण जैसा मनोवैज्ञानिक पृथ्वी में कोई दूसरा नहीं है। उन्होंने तुरन्त समझ लिया कि यदि यह बात मैं अर्जुन को बताऊँगा, तो तुरन्त वह कहेगा कि तब मैं इस कर्म के झंझट में क्यों फँसने के लिये जाऊँ? कर्मफल से निस्पृह होने के कारण हम कहीं आलसी न हो जायें, इसके लिये गीता में भगवान कहते हैं –

कर्मण्येवाधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्व कर्मणि ।। २.४७

हे पार्थ तेरा कर्म में ही केवल अधिकार है, कर्मफल में कभी भी अधिकार नहीं है। अत: तुम कर्मफल का हेतु न बनो और न ही कर्म न करने में तेरी रुचि हो।

हमलोग प्राय: इस श्लोक की आवृत्ति करते रहते हैं। तेरा केवल कर्म करने में ही अधिकार है, फल में कभी-भी अधिकार नहीं है। क्यों? क्योंकि फल हमारे हाथ में नहीं है। हम दो घंटे विलम्ब से अहमदाबाद पहुँचे। गाड़ी के विलम्ब से चलने में कारण हम लोग नहीं थे और न ही रेलवे के अधिकारियों ने उसे विलम्ब से चलाने की कोई योजना बनायी थी। ये योजना उसने बनायी, जिसके शक्ति से सूर्य का उदय और अस्त होता है। यह योजना उसने बनायी जो दिन और रात लाता है। वही भूकम्प कराता है और वही राहत कार्य भी करवाता है। उसी को हम ईश्वर, अल्ला, गॉड आदि कहते हैं। कर्मों का फल शत-प्रतिशत उसके ही हाथ में है।

हमने देखा कि कर्मयोग लक्ष्य नहीं है, कर्मयोग मुक्ति-प्राप्ति का साधन है। जिस साधन के द्वारा हम जो लक्ष्य प्राप्ति करना चाहते हैं, वह लक्ष्य है – मोक्ष या पराभक्ति की

प्राप्ति। आइये, अब इस पर थोड़ा विचार कर लें।

जब हम कर्मयोग करना चाहते हैं, तब हमें अपने जीवन के हर कर्म को योग में परिवर्तित करना चाहिये, तब कर्म योग बनता है, जिससे हम परमात्मा का साक्षात्कार कर मुक्ति प्राप्त करते हैं। ऐसा न होने पर, हमारा कर्म भोग बन जाता है और वह सदैव दु:खकारी तथा बन्धन का कारण होता है।

अब कर्म को योग कैसे बनायें? योग की परिभाषा क्या है तथा उसका आचरण कैसे करें, भगवान इसका वर्णन गीता - २/४८ में करते हैं। यह बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक है –

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।२.४८

हे धनंजय ! तुम आसक्ति को त्यागकर सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित होकर कर्म करो। क्योंकि समता को ही योग कहते हैं।

यहाँ योग का तात्पर्य राजयोग, ज्ञानयोग नहीं है। यह योग का तात्पर्य निष्काम कर्मयोग से है। भगवान कहते हैं – योगस्थ: कुरु कर्माणि' – योग में स्थिर होकर कर्म करो।

आप सब लोग यहाँ बैठे हैं। कोई व्यक्ति आ जाय, तो हम कहेंगें – **पीठस्थः प्रवचनम् शृणु** – कुर्सी में बैठकर प्रवचन का श्रवण कीजिये। वैसे ही भगवान कहते हैं – योगस्थ: योग में स्थिति होकर, समता में स्थित होकर कर्म करो। कर्म करने का यह एक विशेषण है। दूसरा विशेषण है **संगं त्यक्त्वा – संगम् त्यक्त्वा योगे स्थितः कर्माणि कुरु** – हे धनंजय आसक्ति को त्यागकर योग में स्थित होकर कर्म करो। तीसरा विशेषण है सिद्धि-असिद्ध्योः समं भूत्वा – सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखकर कर्म करो। समत्व ही भगवान की सबसे श्रेष्ठ आराधना है। समता में चित्त रखते हुए, सिद्धि और असिद्धि में मन की समान स्थिति रखकर, विचलित न होकर जब मनुष्य कर्म करेगा, तो ऐसी समत्व स्थिति का नाम योग है – **समत्वं योगः उच्यते**। हे अर्जुन, इस मन की सार्वकालिक अवस्था को ही योग कहते हैं।

हमने देखा कि भगवान ने हमें योगस्थ होकर कर्म करने की कला सिखायी। कर्म करने की कुशलता क्या है? हम किस प्रकार जीवन में कर्म करें कि जिससे हमारा कर्म योग बन जाय। और हम सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर इसी देह में, इसी जीवन में, परमानन्द की प्राप्ति कर सकें। भगवान द्वितीय अध्याय के ५०वें श्लोक में कह रहे हैं –

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

अपनी बुद्धि को समत्व में स्थापित करके जो कर्म करता है, उसे पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ दोनों ही कर्म बन्धन में नहीं डालते। वह उन बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इसलिये योग में लग जाओ। अपने जीवन के सभी कर्मों को योगमुखी कर दो। क्यों कर दो? क्योंकि योग ही कर्मों में कुशलता है।

हम कर्म तो करें, किन्तु कर्म हमें बाँध न सके। कर्म का बंधन हमें स्पर्श न करे सके, ऐसा कर्म हमें करना चाहिए। यही कर्म की कुशलता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने, विशेषकर यूंग ह्यूम ने मनुष्य के स्वभाव को सामान्यत: दो प्रकार में बाँटा है – बहिर्मुखी व्यक्तित्व और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व। एक ऐसा व्यक्ति जिसकी वृत्ति बहिर्मुखी है और दूसरा जिसकी वृत्ति अन्तर्मुखी है। उसने ठीक ही कहा है, किन्तु संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो पूर्णत: बहिर्मुखी हो या पूर्णत: अन्तर्मुखी। हमलोग सामान्यत: इन दो अवस्थाओं के मिश्रित रूप हैं। कुछ महायोगियों की बात छोड़ दें, तो वे महायोगी भी निर्विकल्प समाधी में ही पूर्णत: अन्तर्मुखी होते हैं। समाधी से नीचे आने पर उन्हें भी बहिर्मुखी होना पड़ता है। वे भोजन करते हैं, लोगों से चर्चा करते हैं, लोगों से मिलना-जुलना आदि, ये सब थोड़ा बहिर्मुखी हुए बिना नहीं हो सकता। इस प्रकार संसार में कोई भी व्यक्ति पूर्णत: बहिर्मुखी और पूर्णत: अन्तर्मुखी नहीं हैं। इन दोनों में से एक वृत्ति किसी में प्रधान और किसी में गौण हो सकती है। एक व्यक्ति बहिर्मुखी प्रधान होगा, तो दूसरा व्यक्ति अंतर्मुखी प्रधान हो सकता है। अब मेरी वृत्ति या मेरे हृदय की चित्तवृत्ति में क्या प्रधान है, इसका निर्णय मुझे स्वयं को आत्मनिरीक्षण द्वारा करना पड़ता है। ऐसे सौभाग्यशाली लोग इस पृथ्वी में बहुत कम हैं, जिनको ऐसे महान् गुरु मिल गये हैं, जिन्होंने आदेशपूर्वक बताया हो कि तुम अन्तर्मुखी साधना करो और तुम बहिर्मुखी साधना। पर हम सब लोग यहाँ जो उपस्थित हैं, संभवत: ऐसे सौभाग्यशाली नहीं है कि जिन्हें उनके गुरू ने स्पष्ट रूप से बता दिया हो कि तुम अंतर्मुखी या बहिर्मुखी साधना करो। इससे हमलोगों के मन में हमेशा द्वन्द्व चलता रहता है। इसलिये हमें स्वयं को हमेशा अपनी परीक्षा करनी पड़ेगी। कर्मयोग संसार के अधिकांश लोगों के लिए है, क्योंकि हम सब प्राय: बहिर्मुखी वृत्ति के हैं। शास्त्रीय भाषा में इसे प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं। प्रवृत्ति मार्ग में जाने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रवृत्ति मार्ग में चलकर धीरे-धीरे एक दिन हम निवृत्ति मार्ग में पहुँचेंगे, अंतर्मुखी होंगे। यह सौभाग्य कब होगा, इसे ईश्वर ही जानते हैं। इसलिए हम सबको आत्मनिरीक्षण करके देखना चाहिए कि हमारे जीवन में क्या प्रधान है?

यदि मेरा स्वभाव बहिर्मुखी है और मैं अन्तर्मुखी व्यक्ति के समान साधना करूँगा, तो मेरा व्यक्तित्व विकृत हो जायेगा; और अधिक संभावना है कि व्यक्ति पागल हो जाए।

(शेष अगले पृष्ठ पर नीचे)

विलियम्स

स्वामी प्रभानन्द

(श्रीरामकृष्ण के जीवन-काल में अनेक नर-नारी उनके सम्पर्क में आये और उनके अनुरागी बने। विद्वान् लेखक रामकृष्ण मठ तथा मिशन के महासचिव हैं। आपने अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ उनकी पहली मुलाकातों का वर्णन किया है। वर्तमान लेख First Meetings with Sri Ramakrishna नामक अंग्रेजी ग्रन्थ से स्वामी श्रीकरानन्द जी द्वारा अनुवादित हुआ है। – सं.)

शम्भुचरण मल्लिक ही सम्भवत: पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने १८७४ ई. के नवम्बर के कुछ काल बाद श्रीरामकृष्ण को बाइबिल पढ़कर सुनाया और नाजरथ के ईसा के विषय में बताया। श्रीरामकृष्ण को ईसा मसीह का जीवन बड़ा आकर्षक लगा और उनके विचार उन ईश्वर-पुत्र के व्यक्तित्व में केन्द्रित होने लगे। एक दिन श्रीरामकृष्ण यदु मल्लिक के दक्षिणेश्वर-स्थित उद्यान-भवन के बैठकखाने में आसीन होकर बड़ी तल्लीनता से वहाँ लगे मेरी तथा शिशु ईसा के तैल-चित्र को देख रहे थे, तभी उन्हें एक दैवी भाव की उद्दीपना हुई और उनका अन्त:करण पूरी तौर से ईसा मसीह के चिन्तन में डूब गया। श्रीरामकृष्ण का लालन-पालन यद्यपि एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण-परिवार में हुआ था, उन्होंने दीर्घकाल तक हिन्दू पद्धति से साधनाएँ की थीं और हिन्दू आचार-विचार तथा परम्पराओं में पगे हुए थे, तथापि अब वे पूरी तौर ईसा और ईसाइयत के प्रति प्रेम को समर्पित हो गये। इसने उनके भीतर के समस्त हिन्दू ढंग से सोचने और रहन-सहन के भाव को निकाल दिया। लगातार तीन दिन उन्होंने इसी तरह की भावावस्था में बिताये। अन्तत: तीसरे दिन की संध्या के समय उन्हें ईसा के दर्शन हुए, जो उनके सम्मुख प्रकट हुए और उनका आलिंगन किया और उन्हीं के भीतर समाहित हो गये। इस दर्शन से उन्हें यह विश्वास हो गया कि बुद्ध और कृष्ण के समान ही ईसा भी पूरी तौर से एक दिव्य अवतार थे और ईसाई धर्म भी एक ऐसा पथ है, जिससे ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। ईश्वर तक पहुँचने के विभिन्न पथों की खोज में, श्रीरामकृष्ण अब भारत की सीमा से बाहर के अन्य धर्मों की ओर मुड़ रहे थे; और इस प्रकार उन्हें जो अनुभूतियाँ हुईं, उनके अन्त में उन्होंने घोषित किया – "मुझे एक बार सब धर्म करने पड़े थे – हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान – इधर शाक्त, वैष्णव, वेदान्त – इन सब रास्तों से भी आना पड़ा है। ईश्वर वही एक है – सब लोग भिन्न-भिन्न मार्गों से उन्हीं की ओर चल रहे हैं।"[१]

उनका उद्देश्य किसी नये पन्थ की स्थापना नहीं, अपितु इसी बात को पुन: प्रचारित करना था कि ईश्वर का साक्षात् और अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करना ही सभी धर्मों का लक्ष्य है।

श्रीरामकृष्ण ने उसी तरह की ईश्वरानुभूति प्राप्त की थी, जैसी कि एक ईसाई भक्त करता है, हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म की ओर उन्मुख होते समय उनके व्यक्तित्व में पूरी तौर से परिवर्तन हो गया था और वे एक सच्चे ईसाई बन गये थे – श्रीरामकृष्ण के अति-उत्साही भक्तों के इस दावे पर अनेक ईसाई धर्मशास्त्री आपत्ति करेंगे। यहाँ हम एक ऐसा ही विशिष्ट उद्धरण देते हैं – "श्रीरामकृष्ण ने कभी चर्च के केरिग्मा (बाइबिल के उपदेशों की प्राथमिक उद्घोषणा) को नहीं सुना था; मनुष्य की पाशविकता, पाप का बन्धन और ईसा द्वारा उसकी मुक्ति – ये बातें उन्हें कदापि ग्राह्य नहीं थी। उन्होंने ईसा को अपने भाव के अनुरूप, हिन्दू परम्परा में निमग्न होकर एक संन्यासी की दृष्टि से देखा था।"[२]

खैर, इस अलौकिक अनुभूति के फलस्वरूप, जैसा कि रोमाँ रोलाँ ने लिखा है, "परवर्ती काल में ऐसा होता था कि भारतीय ईसाई उनके भीतर साक्षात् ईसा की अनुभूति करके भावसमाधि में डूब जाते थे।"[३] रोमाँ रोलाँ के इस कथन को समझाने हेतु हम एक ईसाई भक्त विलियम्स[४] की श्रीरामकृष्ण से प्रथम भेंट को पाठकों के समक्ष रखते हैं। ये उन लोगों में एक थे, जो श्रीरामकृष्ण के पास कई बार आये थे।

विलियम्स भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में कहीं रहते थे।

१. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, नागपुर, भाग १, सं. १९९९, पृ. ७४; **२.** श्रीमती नलिनी देवदास : 'श्रीरामकृष्ण', द क्रिश्चियन इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ रेलिजन ऐंड सोसायटी, बैंगलोर, पृ. २५; **३.** रोमाँ रोलाँ : 'दि लाइफ ऑफ रामकृष्ण' (अद्वैत आश्रम, मायावती, १९४७), पृ. ८४; **४.** वे सम्भवत: किसी स्कूल में पढ़ाते थे और बाइबिल के अच्छे विद्वान् माने जाते थे।

पिछले पृष्ठ का शेषांश

बहुत से ऐसे लोग पागल या विकृत दिखते भी हैं। जिसकी वृत्ति अंर्तमुखी है, वह यदि बलपूर्वक बहिर्मुखी वृत्ति से कार्य करे, तो वह भी विकृत हो जायेगा। इसलिए भगवान श्रीरामकृष्णदेव और स्वामीजी ने समन्वय योग की बात कही। विवेकानन्दजी ने चारों योगों का समन्वय किया है, जो रामकृष्ण मिशन के प्रतीक चिह्न में प्रदर्शित है। अब आप यह स्वयं अपने जीवन में निर्णय करें कि आपके जीवन में क्या प्रधान है। ❖ **(क्रमश:)** ❖

२वे ब्राह्म-प्रचारक केदारनाथ चटर्जी के सम्पर्क में आये थे, जो उस क्षेत्र में अपने प्रवचनों के दौरे पर गये हुए थे। उनसे उन्हें पता लगा कि जब से केदारबाबू दक्षिणेश्वर के परमहंस के सम्पर्क में आये, तब से उनके विचारों और व्यवहार में काफी परिवर्तन आ गया था। स्वयं एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति होने के कारण मिस्टर विलियम्स ऐसे परमहंस के बारे में और अधिक जानने को आतुर हो उठे। ब्राह्मसमाज की पत्रिकाओं में यदा-कदा परमहंस के बारे में प्रकाशित खबरों ने उनकी उत्सुकता को और अधिक तीव्र कर दिया। अन्त में वे लम्बा रास्ता तय करके सीधे कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के लिए आये। चूँकि गुड-फ्राइडे का दिन नजदीक था, इसलिए दक्षिणेश्वर के सन्त के प्रथम दर्शन के लिए वे इसी शुभ दिन की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।[५]

सम्भवत: १८८१ ईसवी[६] में गुड-फ्राइडे के दिन दोपहर के करीब १ बजे विलियम्स केदारनाथ के साथ दक्षिणेश्वर मन्दिर में पहुँचे और सीधे श्रीरामकृष्ण के कमरे के उत्तरी बरामदे में गये। विलियम्स भारी शरीर, गेहुँआ रंग तथा बड़ी-बड़ी आँखोंवाले प्रौढ़ व्यक्ति थे। वे यूरोपीय वेशभूषा पहने हुए थे। अपने जूते और हैट को उतारकर, वे दोनों हाथ जोड़कर दरवाजे के सम्मुख खड़े हो गये और पूरी सम्भावना है कि केदारबाबू उनके बगल में रहे होंगे। कमरे के भीतर श्रीरामकृष्ण भक्तों की छोटी-सी टोली के साथ वार्तालाप कर रहे थे, जिसमें उनके अनन्य भक्त रामचन्द्र दत्त भी थे। मध्यम ऊँचाई एवं नाजुक स्वास्थ्यवाले, हल्की दाढ़ी-मूँछ, सुन्दर काले नेत्र और दिव्य आभा से दीप्त शिशुवत् मुख-मण्डलवाले परमहंस ने नवागन्तुक को अत्यधिक प्रभावित किया।

तभी श्रीरामकृष्ण के सम्मुख बैठे श्रोताओं में से एक ने आगन्तुक की ओर उनका ध्यान खींचते हुए कहा, "लगता है कि केदारबाबू ने जिन साहब के बारे में कहा था, वे आ गये हैं।" इन शब्दों से ऐसा लगा कि ठाकुर में सहसा एक परिवर्तन आ गया। उनका मन उच्च आध्यात्मिक भाव में डूबने लगा। मानो अपने ऊपर नियंत्रण खोते हुए वे नवागन्तुक के स्वागत के लिए तेजी से बाहर आये।[७] उनकी धोती का एक छोर जमीन पर झूल रहा था, पर वे उससे बेखबर थे।

ज्योंही श्रीरामकृष्ण कमरे के बाहर निकले, विलियम्स उनके सम्मुख श्रद्धापूर्वक घुटनों के बल बैठ गये और श्रीरामकृष्ण के मुख की ओर ताकने लगे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने सन्त के चरणों को चूम लिया तथा अपने आँसुओं से उन्हें भिगो दिया।[८] दूसरी ओर श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गये, उनका मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठा और चारों ओर मानो आनन्द और शान्ति विकिरित करने लगा। इस घटना से अन्य भक्तगण अचरज में पड़ गये। वे शायद यह अनुमान तक न कर सके कि दोनों के बीच क्या घट रहा था। कुछ समय बाद सहज होने पर श्रीरामकृष्ण हाथ पकड़कर विलियम्स को भीतर ले गये। उन्होंने विलियम्स के लिए फर्श पर एक चटाई बिछा दी और दूसरे पर स्वयं बैठ गये। दोनों चटाइयों के बीच के छोटे-से अन्तर को दिखलाते हुए उन्होंने कहा, "देखों, मैंने बस एक अँगुली मात्र का अन्तर रखा है।" विलियम्स ने मुसकुराते हुए उत्तर दिया, "महाशय, दोनों चटाइयों में भले ही अन्तर हो, पर मेरा हृदय तो आपके साथ जुड़ ही गया है।"[९]

विलियम्स निश्चित रूप से श्रीरामकृष्ण के पास यह जानने आये थे कि क्या किसी को ईश्वर का साक्षात् दर्शन हो सकता है? इस पहली ही मुलाकात में विलियम्स ने ऐसा कुछ अनुभव किया, जिसकी पूर्व में उन्होंने कोई कल्पना ही नहीं की थी; क्योंकि बाद में उन्होंने कई भक्तों को बताया था कि उन्हें श्रीरामकृष्ण के भीतर साक्षात् ईसा के दर्शन हुए थे। वास्तव में वे प्राय: भूल गये थे कि वे एक हिन्दू सन्त के पास आये हैं। उन्होंने पाया कि उनके प्रिय इष्ट, उनके ईश्वर ईसा ने ही विभिन्न वर्णों में श्रीरामकृष्ण के व्यक्तित्व के माध्यम से अपने को उनके सामने प्रकट किया है। इस प्रकार वे पूरे समय वहाँ श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े बैठे रहे।

इस महत्त्वपूर्ण भेंट के जो थोड़े से और बिखरे हुए तथ्य मिलते हैं, उनमें एक विवरण सर्वत्र मिलता है और वह यह है कि कुछ प्रारम्भिक बातचीत के बाद, श्रीरामकृष्ण बल्कि

५. महात्मा रामचन्द्रेर वक्तृतावली (बँगला), योगोद्यान, काँकुड़गाछी, कलकत्ता, भाग २, तृतीय सं., पृ. ३८४-५

६. 'दि इंडियन मिरर' के २८ मार्च १८७५ के अंक में केशवचन्द्र सेन द्वारा पहली बार श्रीरामकृष्ण का उल्लेख किये जाने पर ब्राह्मभक्त और वैसी रुचिवाले लोग श्रीरामकृष्ण के बारे में जान सके थे। इसके शीघ्र बाद केदारनाथ चटर्जी उनसे परिचित हुए। रामचन्द्र दत्त श्रीरामकृष्ण से पहली बार १३ नवम्बर १८७९ को मिले थे। विलियम्स, चूँकि उनसे पहली बार एक 'गुड-फ्राइडे' के दिन मिले थे, अक्षयकुमार सेन की 'पुँथि' के अनुसार यह भेंट २३ फरवरी १८८२ के आसपास हुई थी, जब जोसेफ कुक श्रीरामकृष्ण से मिले थे। पर विलियम्स की प्रथम भेंट के समय रामचन्द्र दत्त का उपस्थित रहना, सूचित करता है कि यह प्रथम भेंट १८८१ के 'गुड फ्राइडे' को हुई थी।

७. श्रीरामकृष्ण-पुँथी (पृ. ३७६-७) के अनुसार विलियम्स के आगमन की सूचना श्रीरामकृष्ण को भक्तों ने नहीं दी; वरन् उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण एकाएक बिना किसी कारण के मानो आवेग में आ गये और नवागन्तुक के स्वागत के लिए तेजी से बाहर आये। तथापि कोई अन्य प्रमाण इस बात की पुष्टि के लिए उपलब्ध नहीं हैं।

८. 'वक्तृतावली', भाग २, पृ. १३१ में इस घटना को रामचन्द्र दत्त ने इसी प्रकार वर्णित किया है। **९.** विलियम्स ने अजमेर में अखण्डानन्दजी से भेंट होने पर यह बात कही थी। (स्वामी अखण्डानन्द : स्मृति कथा, बँगला, द्वि.सं., पृ. ६५-६)

अचानक ही पूछ बैठे, ''अच्छा, मेरे विषय में तुम्हारी क्या धारणा है? मैं कौन हूँ?''

श्रीरामकृष्ण अपने पास आनेवाले निष्ठावान आगन्तुकों से यह जानने के लिए उपरोक्त प्रश्न पूछते थे कि वह उनके प्रति क्या दृष्टिकोण लेकर आया है। इस प्रकार दूसरे का अपने प्रति विश्वास और ईश्वर के विषय में उसकी धारणा को परखने के बाद श्रीरामकृष्ण हर साधक के साथ एक विशेष आध्यात्मिक भाव रखते और ईश्वर की ओर जाने के लिए उसका मार्गदर्शन करते। वे उत्तर में दिये गये मात्र शब्दों को ही नहीं देखते, अपितु यह भी देखते कि जिज्ञासु ने अपनी सहज प्रवृत्ति से ऐसा उत्तर दिया है अथवा दूसरों के द्वारा प्रेरित हो ऐसा कहा है। श्रीरामकृष्ण का उद्देश्य यही होता कि जो जहाँ हो, उसे वहीं से उसके परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करा दें। वैसे विलियम्स उन थोड़े-से अत्यन्त सौभाग्यशाली लोगों में से थे, जिनसे श्रीरामकृष्ण ने अपनी पहली ही भेंट में ऐसा प्रश्न पूछा था; और घटनाक्रम से यह स्पष्ट भी हो जाता है कि उनके साथ ऐसा क्यों हुआ।

विलियम्स ने तत्काल उत्तर दिया, ''आप साक्षात् नित्य-चिन्मय-विग्रह ईश्वरपुत्र ईसामसीह ही हैं।''[१०]

निस्सन्देह विलियम्स की धारणा को ईसाई धर्मशास्त्रियों द्वारा स्वीकृति नहीं मिलेगी। चर्च की केरिग्मा के अनुसार ईश्वर ने अपने आपको अन्तिम रूप से और पूर्ण रूप से सर्वदा के लिए ईसा की देह में प्रकट कर दिया है। एक कट्टर ईसाई मानता है कि ईसा ही एकमात्र मसीहा हैं; वह मनुष्य के स्वर्ग से पतन, उसके पापी होने और एकमात्र ईसा द्वारा उसके मुक्ति पाने पर विश्वास करता है। वैसे विलियम्स एक प्रोटेस्टेंट ईसाई थे, तो भी उन्हें ऐसी कुछ प्रत्यक्ष अनुभूति जरूर हुई होगी, जिससे वे ऐसे उद्‌गार प्रकट करने के लिए प्रेरित हो सके। उनकी ईमानदारी पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

दोनों के बीच क्या आदान-प्रदान हुआ – उसे जानने के लिये इससे अधिक और कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है, सिवाय इसके कि उस थोड़े समय में ही विलियम्स को स्पष्ट रूप से विश्वास हो गया था कि श्रीरामकृष्ण भले ही एक दार्शनिक या विद्वान् व्यक्ति न हों, पर सर्वोच्च अनुभूतिवाले मनुष्य हैं; और ये जो भी कहते हैं, पूरे अधिकार के साथ कहते हैं।

हम जानते हैं कि भेंट के अन्त में श्रीरामकृष्ण ने स्नेहभरे शब्दों में विलियम्स से कहा था, ''चिन्ता न करो; परन्तु यहाँ पर दो बार और आना।''[११] कथाओं तथा दैनन्दिन जीवन के दृष्टान्तों से सर्वदा परिपूर्ण रहनेवाली श्रीरामकृष्ण की बातों ने विलियम्स पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि उन्होंने सहर्ष यह सुझाव मान लिया। बाद में यह अधिकाधिक स्पष्ट हो गया कि ('दो' या अधिक बार होनेवाली) इन भेटों से विलियम्स में महत्त्वपूर्ण और स्थायी परिवर्तन आया था, जिससे उनका आध्यात्मिक जीवन गहरा और अनुभूतिसम्पन्न बनता गया। इसके कुछ वर्षों बाद रामचन्द्र दत्त ने विस्मय के साथ देखा था कि प्रोटेस्टेंट ईसाई विलियम्स ठनठनिया के मन्दिर में सिद्धेश्वरी देवी (काली) की मूर्ति को प्रणाम कर रहे हैं। पूछने पर विलियम्स ने रुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया था, ''मुझे मूर्ति में ईसा के दर्शन हुए। स्पष्ट है कि मेरी अपनी पुरानी धारणा टूट गयी है। श्रीरामकृष्ण ने मेरी हठधर्मिता को चूर-चूर करके मानो एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है। उनकी कृपा से अब मैं ऐसा देख और समझ सकता हूँ, जैसा मुझे पहले कभी नहीं सूझा। अब कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं कितना मूर्ख था, जो एक कट्टर ईसाई की तरह देवी-देवताओं की मूर्तियों से घृणा करता था। परन्तु यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे नवजीवन का वरदान मिला है।''[१२]

इस कथा का उपसंहार करने के पूर्व हम विलियम्स के विषय में स्वामी सारदानन्द द्वारा दी गयी अन्तिम जानकारी भी दे देना उचित समझते हैं, ''विश्वस्त सूत्रों से हम जानते हैं, यह व्यक्ति श्रीरामकृष्ण के पास कई बार आने-जाने के बाद ही इस बात पर विश्वास कर सका कि वे ईश्वर के अवतार हैं और उनके उपदेशानुसार उसने संसार का परित्याग करके पंजाब के उत्तर में स्थित हिमालय के किसी दुर्गम स्थल में बैठकर तपस्या करते हुए देहत्याग कर दिया था।''[१३]

❖ (क्रमशः) ❖

१०. श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, भाग २, सं. २००८, पृ. ८६३

११. 'तत्त्वमंजरी' (बँगला) वर्ष ३०, संख्या २, पृ. ४०-४१ में इस भेंट का संक्षिप्त वर्णन है। घटना का ऐसा ही वर्णन तथा और कुछ बाद के तथ्य 'वक्तृतावली', भाग २, पृ. ३८९-९० में मिलते हैं।

१२. 'वक्तृतावली', भाग २, पृ. ३९०

१३. लीलाप्रसंग, भाग २, सं. २००८, पृ. ८६३ (पाद-टिप्पणी)

दुराग्रह का दोष

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिये विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित किये गये तथा लोकप्रिय भी हुए। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। – सं.)

दुराग्रह एक मानसिक रोग है। इसे दूसरे शब्दों में 'हठ-धर्मिता' कहा जा सकता है। इसका कारण होता है – अपने विश्वास को तर्क की कसौटी पर न कसना। दूसरे शब्दों में, दुराग्रह के पीछे मनुष्य का अन्धविश्वास होता है। मनुष्य में केवल विश्वास ही न हो, अपितु वह विश्वास युक्तिसंगत भी हो। यदि मनुष्य को सभी कुछ मानने और करने पर बाध्य किया जाय, तो उसे पागल हो जाना पड़ेगा। स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक भाषण में एक महिला का उदाहरण दिया है, जिसने उनके पास एक पुस्तक भेजी थी। उसमें लिखा था कि उसमें लिखी बातों पर उन्हें विश्वास करना चाहिए। पुस्तक में बताया गया था कि आत्मा नामक कोई चीज नहीं है, परन्तु स्वर्ग में देवी-देवता हैं और हममें से प्रत्येक के सिर में से ज्योति की एक किरण निकलकर स्वर्ग तक पहुँचती है। स्वामीजी कहते हैं कि उस महिला की धारणा थी कि उसे दिव्य प्रेरणा मिली है और वह चाहती थी कि मैं भी उस पर विश्वास करूँ; और चूँकि मैंने ऐसा करने से मना कर दिया, तो उसने कहा, "तुम निश्चय ही बड़े खराब आदमी हो, तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं !" यही दुराग्रह है।

दुराग्रह के पीछे मनुष्य का सहज औद्धत्य-भाव रहता है। छोटा बच्चा बड़ा दुराग्रही होता है, पर जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसका मानसिक विकास होता जाता है। वह किसी वस्तु या घटना को तब केवल अपने नजरिये से नहीं देखता, अपितु दूसरे के नजरिये का भी सम्मान करना सीखता है। इसलिए उसमें दुराग्रह की मात्रा कम होती जाती है। इसे सुविख्यात जीवशास्त्री जूलियन हक्सले 'मनो-सामाजिक विकास' (psycho-social growth) कहकर पुकारते हैं। वे तीन तरह के विकास की बात कहते हैं। पहला है – physical growth यानी भौतिक अर्थात् शारीरिक विकास। दूसरा है – intellectual growth अर्थात् बौद्धिक विकास और तीसरा है – psycho-social growth अर्थात् मनो-सामाजिक विकास। भौतिक या शारीरिक विकास की बात हम समझते हैं। एक शिशु जब पैदा होता है, तब उसकी ऊँचाई-लम्बाई शायद डेढ़ फुट हो, वजन शायद ७-८ पौंड हो, पर जब वही आगे चलकर २५ वर्ष का नौजवान बनता है, तब शायद उसकी ऊँचाई ६ फुट हो जाय और वजन २०० पौंड। यह भौतिक या शारीरिक विकास है। बौद्धिक विकास की बात समझ में आती है। गाँव के विद्यालय से शहर के कॉलेज में पढ़ने आया लड़का पहले दब्बूपने के कारण सहमा-सहमा रहता है, बोलने में भी झेंपता है; पर जब धीरे-धीरे शहर के परिवेश का अभ्यस्त हो जाता है, शहरी परिवेश उसमें आत्मविश्वास को जगाने लगता है, तो फिर वही लड़का छात्रसंघ के चुनावों में भी भाग लेता है, अपने विचारों को अभिव्यक्त करना सीख जाता है। यह बौद्धिक विकास की सूचना है।

अब विकास के तीसरे आयाम 'मनो-सामाजिक विकास' को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे। एक छोटा-सा लड़का ७-८ वर्ष का अपने विद्यालय से लौटकर घर आया। वह घर में घुसते ही चिल्लाते हुए कहता है, 'माँ, खाना दो।' माँ यदि बीमार है, खाट से उठ नहीं पा रही है और कहती है, 'बेटा, खाना वहाँ रखा है, निकालकर खा ले। मुझे जोरों का बुखार है, उठा नहीं जा रहा है।' तो लड़का चीख-चीखकर कहता है, 'नहीं, उठो, तुम मुझे खाना दो।' और तब तक चिल्लाना बन्द नहीं करता, जब तक माँ उठकर उसे खाना नहीं देती।

यह छोटा-सा बालक केवल अपने लिए ही जीता है, उसे दूसरों के दु:ख, दूसरों की पीड़ा की परवाह नहीं है। वह दुराग्रही है। उसमें 'मनो-सामाजिक विकास' नहीं हुआ है। पर जब वही बालक बढ़कर किशोर हो जाता है, तब उसकी सहानुभूति की क्षमता बढ़ जाती है, दूसरों का दु:ख-दर्द उसे अपना मालूम पड़ने लगता है। जब वह विद्यालय से घर लौटता है और माँ को खाट में पड़े देखता है, तो पूछता है, 'माँ, तुम्हें क्या हुआ?' माँ के शरीर पर हाथ लगाकर देखता है कि उसे तेज बुखार है। माँ उठते हुए कहती है, 'चल, तुझे खाना दे दूँ।' पर वह रोक देता है, माँ को सुला देता है, कहता है, 'माँ, तुम मत उठो, क्या करना है सो बता दो, मैं सब कर लूँगा, तुम आराम करो।' वह माँ की सेवा करता है, डॉक्टर को बुला लाता है, माँ को दवा-पथ्य देता है। यह उस लड़के का मनो-सामाजिक विकास है।

दुराग्रही व्यक्ति मनो-सामाजिक विकास से वंचित होता है। वह दैहिक विकास के कारण शिशु से प्रौढ़ तो हो जाता है, पर मनो-सामाजिक विकास के अभाव में शिशु के समान दुराग्रही रह जाता है। आज के मनो-चिकित्सकों के अनुसार सौ में से नब्बे दुराग्रहियों का या तो यकृत खराब होता है या वे मन्दाग्नि या किसी अन्य रोग से पीड़ित होते हैं। व्यक्ति का मनो-सामाजिक विकास ही दुराग्रह की दवा है। ❑❑❑

माँ की पुण्यस्मृति

ज्योतिर्मयी बसु

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

पन्द्रह वर्ष की उम्र में भक्त प्रवर अक्षय कुमार सेन की लिखी पुस्तक 'श्रीरामकृष्ण-पोथी' पढ़कर भी मेरे मन यह विश्वास नहीं आया कि श्रीरामकृष्ण 'अवतार' हैं। उस समय मैंने उन्हें 'एक उच्च कोटि के सन्त' ही समझा था। एक दिन रात में सोने से पहले स्थिरचित्त से सोचने लगी – ठाकुर यदि तुम सचमुच ही अवतार हो तो आज रात मैं अपनी माँ को स्वप्न में देखूँ। और सचमुच उस रात मैंने स्वप्न में अपनी माँ को देखा एवं उसके साथ ही बेलूड़ मठ का मन्दिर, ठाकुर का शयनकक्ष तथा बरामदा भी स्वप्न में देखने के बाद अपने बड़े भाई (डॉक्टर दुर्गापद घोष) को पत्र में सब लिखा। मेरी बेलूड़ मठ देखने की इच्छा जानकर भाई भी बड़े खुश हुए और मुझे ससुराल से बेलूड़ मठ ले गये। वहाँ जाकर मैं बेलूड़ मठ का मन्दिर आदि देखकर अवाक् रह गयी। स्वप्न में मैंने जो कुछ देखा था, वहाँ वह सब कुछ वैसा ही देखा।

मेरी इच्छा थी कि मैं माँ से दीक्षा लूँ। स्वप्न में देखा था – मठ के पूजाघर में जहाँ चरणामृत रखा है, उस पंचपात्र में से श्रीरामकृष्ण मुझे चरणामृत और एक बिल्वपत्र दे रहे हैं। स्वप्नावस्था में ही मैंने ठाकुर से कहा – क्या (माँ से मंत्र लेने की) मेरी इच्छा पूर्ण होगी? ठाकुर ने कहा – होगी। इस स्वप्न का विवरण मैंने किसी को भी नहीं बताया था। उस समय मेरा दृढ़ संकल्प था – जैसे भी हो मैं माँ से दीक्षा अवश्य लूँगी। बाद में मैंने पता लगाकर १९०९ ई. के आषाढ़ महीने में एक दिन शाम को उद्बोधन भवन में माँ का दर्शन किया। अगले दिन माँ ने मुझे दीक्षा देकर डूबते को सहारा दिया। माँ से मैंने अपना स्वप्न-वृतान्त बताया। माँ ने मुझे विस्तृत रूप से समझा दिया – मात्र पन्द्रह वर्ष की लड़की एक मनुष्य को अवतार के रूप में (विशेषत: तब तक वैसा प्रचार भी नहीं हुआ था) बिना कुछ अलौकिक देखे कैसे विश्वास करेगी?

उन्हीं दिनों एक अमेरिकी महिला रोज सुबह करीब ७ बजे उद्बोधन में माँ के पास आती थीं। माँ उन्हें 'देवमाता' कह कर सम्बोधित करती थीं। मैंने माँ से सुना था कि इन महिला ने देखा था कि ठाकुर उनके दोनों कन्धों पर पाँव रखकर खड़े हैं। यह देखते ही देवमाता बेसुध हो गयी थीं। बाद में स्वामीजी (विवेकानन्द) के वहाँ जाने पर उनके पास ठाकुर का चित्र देखकर उन्होंने उन्हें पहचाना था। कई वर्ष बाद वे भारत आयीं और बागबाजार (कलकत्ता) के ४७ नं. बोसपड़ा लेन में ठहरीं। वे रोज माँ के कमरे में ध्यान करतीं और उनके दोनों नेत्रों से भक्ति के आवेग में ऐसी अद्भुत अश्रुधार बहती कि उसे बिना देखे विश्वास नहीं किया जा सकता।

माँ इन भगिनी देवमाता के साथ हम सभी को साथ लेकर बगल के कमरे में बैठतीं। राधू (माँ की भतीजी) स्कूल जायेगी, इसलिये माँ उसे भात खिला रही हैं। राधू के खा लेने पर माँ स्वयं जुठन साफ कर रही हैं। हम सभी लोग बैठकर देख रही हैं। आश्चर्य की बात ये विदेशी महिला तीर की तरह उठीं और 'मातादेवी' 'मातादेवी' कहते हुए माँ के हाथ से थाली-कटोरी लेकर वहीं बैठकर दोनों हाथों से जुठन साफ करने लगीं। यह देखकर नलिनी दीदी हँस पड़ी। माँ ने नलिनी दीदी को आँख के इशारे से मना किया। देवमाता के नलघर में बर्तन रखने जाने पर माँ बोलीं, "यह लड़की हमारी भाषा नहीं जानती, तू जो इस प्रकार हँस पड़ी, इससे वह सोचेगी कि पता नहीं उससे कौन-सी गलती हो गयी है। वह सब सोचकर उसे कितना कष्ट होगा।"

बहुत देर बाद देवमाता के अपने निवास स्थान चले जाने पर मैंने ही पुन: गोबर और पानी डालकर घर लीप दिया। उसके बाद मैं हँसकर माँ से बोली – इन महिला के सारे कपड़े जूठे हो गये। माँ ने भी यह बात सुनकर "ठीक ही तो, सब जूठा हो गया" – कहकर हँस पड़ीं।

सर्वधर्म-समन्वय साधन और उसी भाव के प्रचार हेतु ठाकुर इस युग में मानव देह धारण कर आये थे। नश्वर नरदेह त्यागने के बाद ठाकुर ने किसी-किसी भाग्यवान या भाग्यवती प्रत्यक्ष या स्वप्न में दर्शन देकर विश्वास दिलाकर माँ के चरणों में पहुँचा दिया है। माँ ने भी उनके अन्तर के धूल को झाड़कर उन्हें अपने आँचल में समेट लिया है। स्वयं जगदम्बा रूपी हमारी माँ सारदा ही सर्वधर्म-समन्वयकारी और युगधर्म-प्रवर्तक श्रीरामकृष्ण और उनके विश्वविख्यात प्रधान शिष्य विवेकानन्द की मूलाधार थीं। वीर संन्यासी

(शेष अगले पृष्ठ पर नीचे)

रुरु और प्रमद्वरा

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी जपानन्दजी के कुछ संस्मरणों तथा चार पुस्तकों 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी', 'आत्माराम की आत्मकथा' तथा 'काठियावाड़ की कथाएँ' का हम धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। प्रथम तीन का नागपुर मठ से ग्रन्थाकार प्रकाशन भी हो चुका है। १९३७ ई. में उन्होंने महाभारत की कुछ कथाओं का बँगला में पुनर्लेखन किया था। जिसकी पाण्डुलिपि हमें श्री ध्रुव राय से प्राप्त हुई हैं। उन्हीं रोचक तथा प्रेरणादायी कथाओं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

रुरु ब्राह्मण के पुत्र थे। एक दिन घूमते-घूमते वे स्थूलकेश नामक एक ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। वह आश्रम बड़ा सुन्दर था। ऋषि तपस्या करने गये हुए थे, परन्तु आश्रम निर्जन न था। ऋषि की मानसपुत्री प्रमद्वरा आश्रम की शोभा बढ़ाती हुई अनमनी-सी वहाँ विचरण कर रही थी। रुरु उसका रूप देखकर मोहित हो गये, परन्तु प्रमद्वरा के साथ बातें करने का साहस उन्हें नहीं हुआ। घर लौटकर उसने अपने मित्रों से कहा कि प्रमद्वरा को पाये बिना वह प्राणत्याग कर देगा, अत: उसके हितैषी बन्धुओं को उसे उससे मिलाने का प्रयास करना चाहिये।

मित्रों ने उसकी इस अभिलाषा की बात उसके पिता ऋषि प्रमति को बता दी। वे स्थूलकेश के पास गये और अपने पुत्र के लिये उनकी कन्या के लिये प्रार्थना की। रुरु भृगुवंश में उत्पन्न एक अच्छा लड़का था, अत: स्थूलकेश को इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं हुई। इसके अतिरिक्त प्रमति कोई साधारण ऋषि नहीं, अपितु महा-तेजस्वी च्यवन ऋषि के पुत्र थे। अत: उन्हें लौटा देना कदापि उचित नहीं था। वे तत्काल राजी हो गये और विवाह का दिन भी निर्धारित कर दिया। (यथासमय उन्होंने कन्यादान भी कर दिया। रुरु अपनी पसन्द की पत्नी पाकर अत्यन्त आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगा।)

एक दिन प्रमद्वरा अपनी सखियों के साथ पुष्प-उद्यान में आमोद-प्रमोद कर रही थी। वहाँ घास-फूस के बीच एक काला नाग सोया हुआ था। खेलते-खेलते ध्यान न रहने से वह सर्प उसके पाँवों के नीचे आ गया। सर्प ने क्रोधित होकर उसे काट लिया। उसके भयंकर विष से प्रमद्वरा का सारा शरीर काला पड़ गया। सखियाँ उसे घेरकर बैठी हुई आर्तनाद करती हुई रोने लगीं। समाचार पाकर घर के सभी लोग –

पिछले पृष्ठ का शेषांश

विवेकानन्द, अमेरिका से लौटकर जिन चरणों में साष्टांग लोट गये थे, उन्हीं चरणों में हम जैसी दुर्भाग्यशालिनी और अभावग्रस्ता अभागिनियों को भी परम करुणामयी माँ ने अपने स्नेह में एक समान आश्रय दिया है। अयोग्य अक्षम, दीन भक्त सन्तानों के प्रति माँ के इस करूणा, स्नेह, क्षमासहित आश्रय-दान की महिमा अवर्णनीय है। माँ की इस दीन-वत्सलता की बात को मुँह से कहकर नहीं समझाया जा सकता। इन सब बातों को लिखकर समझाना भी मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। इसे केवल वे लोग ही जानते हैं, जिन्हें माँ के श्रीचरणों में उनके आश्रित सन्तान के रूप में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। माँ की परम स्नेहमयी मूर्ति के दर्शन और उनकी अभयवाणी के श्रवण से, समागत व्यक्तियों के हृदय में अवर्णनीय आनन्द की जो धारा उमड़ आती, वह उन सभी के प्राणों की गोपनीय वस्तु है। वह प्रत्येक के हृदय की गहराई में प्रविष्ट हो गया है। उस आनन्द और उस पवित्रता को मुख से कहकर नहीं बताया जा सकता। माँ के अभय-पदों में आश्रय-प्राप्ति और उनकी अहैतुक तथा अविश्रान्त करुणा की बात मैंने इतने दिनों तक कंजूस के धन के समान हृदय में छिपा रखा था। परन्तु अब इतने समय के बाद इस वार्धक्य अवस्था में जो इसे प्रकट कर रही हूँ, उसका यथेष्ट कारण है। इसके विषय में मेरा कहना है कि मेरे समान एक अति सामान्य व्यक्ति द्वारा लिपिबद्ध यह पुण्य स्मृतिकथा पढ़ कर यदि किसी के हृदय में शान्ति और आशा का संचार हो, तो मेरा इस स्मृतिकथा को प्रकट करना सार्थक हो जायेगा।

माँ को, नश्वर शरीर को त्यागकर अपने ज्योर्तिमय धाम में गये हुए अनेक वर्ष बीत गये। उनके सान्निध्य की वह पुण्य-स्मृति और अभय-वाणी ही अब हमारे लिये सांत्वना और सहारा है। माँ की अपार अयाचित करुणा का स्मरण करते हुए उनके प्रति भक्तिपूर्ण प्रणाम के साथ कविता के रूप में अपने हृदय की यह प्रार्थना निवेदित करके इस प्रसंग को समाप्त करती हूँ –

रामकृष्ण लीलामयी जननी सारदे।
सन्तान-सन्तापहरा अभये वरदे।
ज्योर्तिमयी मातृमूर्ति हे आनन्दमयी,
सतत प्रसन्न-नेत्रा क्षेमकंरी आयी।
बहु दिन देखी नहीं तेरी वो मूरति,
इसीलिये मेरा चित्त कातर है अति। ...
दो माँ, मुझे अनुराग शान्ति पवित्रता
भक्ति, मुक्ति, शान्ति दो माँ, हे जगन्माता।।

❖ **(क्रमशः)** ❖

सगे-सम्बन्धी, पड़ोसी और उसके पिता भी वहाँ आ गये।

सूचना पाकर रुरु भी दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। अपनी प्रियतमा प्रमद्वरा को उस अवस्था में देखकर पहले तो वह अचेत हो गया, उसके बाद उठकर पागलों के समान उच्च स्वर में विलाप करता हुआ पास के जंगल में इधर-उधर भटकने लगा। विलाप करते हुए वह बारम्बार कहने लगा, "प्रमद्वरा के बिना मेरा जीवन निरर्थक है। हे देवगण, यदि मैंने शुद्ध मन तथा श्रद्धा के साथ कोई दान, तपस्या या गुरुसेवा की हो, तो प्रमद्वरा बच जाय और फिर से जीवित होकर पहले के समान ही मेरी जीवन-संगिनी हो जाय। मैंने जन्म से लेकर अब तक जितना भी आत्मसंयम तथा व्रतों का अनुष्ठान करके जितने भी पुण्यों का संचय किया है, उस पुण्य के बल से प्रमद्वरा पुन: जीवित हो जाय।"

उसका करुण विलाप सुनकर एक देवदूत को दया आ गयी। वे रुरु के पास जाकर बोले, "वत्स, तुम जो कुछ माँग रहे हो, वह नितान्त असम्भव है। मनुष्य एक बार मर जाने पर फिर से जीवित नहीं हो सकता। गन्धर्वराज विश्वावसु और अप्सराओं में श्रेष्ठ मेनका इस प्रमद्वरा के वास्तविक पिता-माता हैं। आयु समाप्त हो जाने के कारण ही इसकी मृत्यु हुई है। तुम भलीभाँति जानते हो कि समस्त देहधारियों की यही गति हुआ करती है, अत: तुम्हारे लिये शोक करना अनुचित है। वैसे पुरा काल में देवताओं ने एक उपाय बताया है, उसे यदि कर सको तो प्रमद्वरा जीवित हो सकती है।"

रुरु आग्रहपूर्वक बोला, "बोलिये, बोलिये, वह क्या उपाय है? आप जो भी कहेंगे, मैं तत्काल वही करने को तैयार हूँ।"

देवदूत बोले, "हे रुरु, यदि तुम अपनी आधी आयु इस स्त्री को दे दो, तो वह जीवित हो सकती है।"

रुरु ने तत्काल कहा, "मैं अपनी आधी आयु प्रमद्वरा को देता हूँ, वह जीवित हो उठे!" और प्रतीक्षा करने लगा।

अब गन्धर्वराज विश्वावसु, प्रमद्वरा के पिता और वे देवदूत यमराज के पास जाकर बोले, "हे धर्मराज, यदि आप अनुमति दें, तो रुरु की मृत भार्या प्रमद्वरा अपने पति की आधी आयु लेकर पुन: जीवित हो जाय।"

धर्मराज बोले, "ठीक है, ऐसा ही हो।"

धर्मराज के ऐसा कहते ही, प्रमद्वरा अपने पति की आधी आयु पाकर घोर निद्रा से जागने के समान उठकर बैठ गयी। उसे पुन: जीवित देखकर सभी लोग आनन्द से उच्छ्वसित हो उठे – विशेषकर रुरु के तो आनन्द की कोई सीमा ही न रही। प्रमद्वरा ने जब सुना कि वह उसे अपनी आधी आयु देकर यमराज के हाथों से लौटा लाया है, तो उसका हृदय रुरु के प्रति अगाध प्रेम तथा कृतज्ञता से परिपूर्ण हो उठा। परन्तु अपना भाव व्यक्त करने की भाषा उसके पास न होने के कारण, प्रेमाश्रु से उसका सीना भीग गया और इस प्रकार उसके हृदय के भावों को किंचित् अभिव्यक्ति मिली।

अब उनके दिन सुखपूर्वक बीतने लगे। परन्तु रुरु के मन में सर्प जाति के प्रति बड़ा क्रोध हो गया था। उसने उनका ध्वंश करने की प्रतिज्ञा की थी। वह किसी भी साँप को देखते ही उसे मार डालता। एक दिन जंगल में घूमते समय उसने वहाँ डुण्डुभ जाति के एक वृद्ध सर्प को सोते देखा। उसने तत्काल उसे मारने के लिये डण्डा उठाया। डुण्डुभ ने यह देखकर कहा, "हे ब्राह्मण, मैंने तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। तो फिर तुम क्यों अकारण ही मेरा प्राण लेना चाहते हो?"

रुरु बोला, "हे डुण्डुभ, तुम्हारी ही जाति के एक जन ने मेरी प्रिया – प्रमद्वरा को काटकर यमलोक भेज दिया था। बड़ी कठिनाई से मैं उसे वापस पा सका और उसी समय मैंने प्रतीज्ञा की थी कि पूरे सर्पवंश का नाश कर डालूँगा। इसीलिये आज तुम्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।"

डुण्डुभ ने कहा, "हे ब्राह्मण, तुम भूल कर रहे हो, क्योंकि साँपों की अनेक जातियाँ होती हैं। जो डँसते हैं, उन्हें विषधर कहा जाता है, परन्तु डुण्डुभ जाति के साँप किसी को काटते नहीं और उनमें विष भी नहीं होता; वे लोग तो बिल्कुल ही निरीह प्राणी होते हैं। मैं निरपराध हूँ और केवल सर्प वंश में जन्म लिया है, केवल इसी कारण अन्य साँपों के समान इस डुण्डुभ जाति के साँपों को दण्डित करने का कोई कारण नहीं देखता। यह हमारा दुर्भाग्य है, इसलिये कि दु:ख भोगने में तो हम सभी सर्पों के साथ एक हैं, परन्तु सुखभोग तो अन्य जाति के साँपों के ही भाग्य में अधिक होता है। जो भी हो, तुम एक धार्मिक ब्राह्मण हो, तुम्हारे लिये किसी निरपराधी का वध करना उचित नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण-सन्तान के लिये जीवहिंसा करना घोर अधर्म है। अहिंसा परम धर्म है – यह बात क्या तुम नहीं जानते? वेद में भी तो लिखा है कि ब्राह्मण सदा शान्त मूर्ति, वेदवेत्ता तथा सभी जीवों के प्रति अभयप्रद रहेगा। अहिंसा, सत्य तथा क्षमा – यही ब्राह्मण का धर्म है। हिंसा, दण्ड देना, उग्रता तथा प्रजा-पालन क्षत्रिय का धर्म है। तुम्हारे लिये ब्राह्मण होकर क्षत्रिय के धर्म का आचरण करना सरासर अनुचित है।"

इतना कहकर वह डुण्डुभ सर्प अदृश्य हो गया।

(महा., आदिपर्व ८/२६ से ९/१८)

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

२२१. भारत माँ के सभी दुलारे

नेताजी सुभाष ने जब आजाद हिंद सेना का गठन किया, तो देशभक्ति की भावना से प्रेरित हो बड़ी संख्या में नौजवान उनकी सेना में शामिल होने लगे। प्रशिक्षण के दौरान सब सैनिक भाई-चारे के साथ रहते थे, किन्तु जाति-धर्म-निरपेक्ष वृत्ति के कुछ सैनिकों को यह देखकर हैरानी होती कि हिन्दू, मुसलमान सिख और ईसाइयों के लिये अलग-अलग खाना पकता है। उन्हें नेताजी से इसका कारण पूछने की हिम्मत न होती थी। आखिर उनमें से कुछ ने नेताजी से ऐसी भोजन-व्यवस्था पर अपनी नाराजगी जाहिर की और उनसे स्पष्ट रूप से कहा कि जब तक सबका इकट्ठा खाना नहीं पकेगा, वे वहाँ के भोजन का एक दाना भी ग्रहण नहीं करेंगे।''

नेताजी ने बताया कि शुरू में यहाँ इकट्ठे ही खाना बनता था, मगर अपनी जाति को श्रेष्ठ मानने वाले कुछ सैनिकों के आपत्ति व्यक्त करने पर उनके लिए अलग-अलग खाना पकने लगा। उन्होंने आगे कहा, ''यदि आप लोग इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं, तो मेरा साथ दें। मैं आज ही इस व्यवस्था को हमेशा के लिये खत्म कर दूँगा।''

सैनिक यही तो चाहते थे। उन्होंने नयी व्यवस्था अपनाने में उनका साथ देने का वचन दिया। जब परेड समाप्त हुई, तो सैनिक अपनी-अपनी जाति के मुताबिक कतारबद्ध हो गए। नेताजी ने सामने खड़े उन धर्म-निरपेक्ष वृत्तिवाले सैनिकों बुलवाया और उनसे अलग-अलग जातिवाले सैनिकों के लिए बने भोजन में से अलग-अलग थालियों में चावल, रोटी, दाल और सब्जी ले आने को कहा। फिर चार अलग थालियाँ मँगाकर हर एक से अपनी-अपनी थाली की रोटियों के टुकड़े करके चार-चार टुकड़े उन थालियों में रखने को कहा। फिर हर एक के चावल, दाल व सब्जी को थोड़ा-थोड़ा सब थालियों में डालने को कहा। फिर उन्होंने हर थाली को चावल और रोटियों का एक-एक कौर खाना शुरू किया। यह देखकर कुछ सैनिक चिल्ला उठे, ''आपको जब हमारी रोटी, सब्जी आदि खानी थी, तो उन्हें एकत्र क्यों किया और उसे आप हमारे सामने क्यों खा रहे हैं?''

नेताजी ने उत्तर दिया, ''हमारे देश में भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय के लोग इकट्ठे रहते हैं, लेकिन उनमें से कोई भी यह नहीं कहता कि यह देश हमारी जातिवालों का है; सब अलग-अलग जातिवालों से चीजें खरीदते और बेचते हैं; कोई उनकी जाति-धर्म नहीं पूछता। फिर यहीं पर आप लोग अलग भोजन की माँग आप क्यों करते हैं? हम सब अलग-अलग जाति और धर्म के होकर भी हम सबका एक ही ध्येय है – देश को आजाद करना। हम एक-दूसरे के दुश्मन नहीं हैं। हमारे, दुश्मन हैं – सात समुन्दर पार से आकर हमें गुलाम बनाने वाले अंग्रेज! देश को आजाद कराना हमारा एकमात्र लक्ष्य है। हमें जाति आदि की भावना को दिल से निकालकर कुरबानी के लिए तैयार होकर अंग्रेजों से लोहा लेना है, तभी हम इस लक्ष्य तक पहुँच पायेंगे। तुम यदि अपना रक्त देने के लिए तैयार हो, तो आजादी हमारे लिये दूर नहीं है।'' इन जोश भरे शब्दों का नौजवानों पर असर कैसे न होता? उन्होंने उसी समय जातिगत भेदभाव भुलाकर एकजुट होकर दुश्मन से मुकाबला करने की प्रतिज्ञा की।

२२२. एकाग्रता ही सफलता का रहस्य है

एक बार सन्त विनोबा भावे गांधीजी से मिलने साबरमती आश्रम में गये। सुबह का समय था और गांधीजी चरखे से सूत कात रहे थे। सूत-कताई विनोबाजी की भी दिनचर्या का एक अंग होने के कारण उन्होंने भी चरखा और पोनी मँगाकर सूत कातना शुरू किया। उन्होंने गाँधीजी द्वारा काते सूत पर दृष्टि डाली, तो उन्हें वह अपने सूत से ज्यादा महीन लगा। उन्होंने गाँधीजी से पूछा, ''बापू, मुझे भी सूत कातने का अच्छा अभ्यास है। मैं भी रोज सुबह सूत कातता हूँ। मगर मेरा सूत आपके सूत जैसा महीन क्यों निकल नहीं रहा है।''

गाँधीजी ने मुस्कुराते हुए कहा, ''किसी भी काम को करते समय एकाग्रता आवश्यक है। जैसे अर्जुन को बाण चलाने का अभ्यास करते समय चिड़िया की केवल दाहिनी आँख ही दिखाई दे रही थी, वैसे ही हमारा लक्ष्य भी सूत की कताई ही होनी चाहिए। पोनी अत्यन्त मुलायम होती है। हमारी दृष्टि उस पर स्थिर न रही, तो सूत महीन कैसे निकलेगा? हमारा ध्यान चरखे और पोनी पर नहीं रहेगा, तो हमारे मन-मस्तिष्क में दूसरे विचार उठेंगे और इसका असर कताई पर होगा। इसीलिये किसी भी काम को कुशलतापूर्वक करने में एकाग्रता का बड़ा महत्त्व होता है।''

स्वामी विवेकानन्द की बोधगया-यात्रा (२)

स्वामी विदेहात्मानन्द

तारक (स्वामी शिवानन्द) ने इस यात्रा के प्रसंग में लिखा है, "काशीपुर के उद्यान-भवन में ठाकुर के सेवा में निरत रहते समय (हम लोगों में) वेदान्त-चर्चा और वैराग्य का तरंग इतना प्रबल हो गया था कि एक दिन स्वामीजी ने ठाकुर को बिना बताये ही मुझे और कालीभाई को साथ लेकर, ज्ञान-वैराग्य की जीवन्त प्रतिमा बुद्धदेव की तपस्या और सिद्धि के स्थान बोधगया की गुप्त रूप से यात्रा की।"[१३]

तीनों केवल एक-एक गेरुआ वस्त्र पहने और कन्धे पर एक-एक कम्बल लेकर निकल पड़े थे। स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं, "एक दिन नरेन्द्रनाथ, तारकदादा और मैं कलकत्ते से नंगे-पाँव चलते हुए संध्या के पूर्व काशीपुर के उद्यान में आये। हमारी इच्छा इतनी बलवती हो उठी कि हमसे और रहा नहीं जा रहा था। नरेन्द्रनाथ ने कहा, 'चल, हम किसी को बिना बताये ही बोधगया चले जायँ!' हमने ठाकुर के समक्ष भी अपने बोधगया जाने की कोई चर्चा नहीं की। नरेन्द्रनाथ हम तीनों का रेलभाड़ा जुटाकर तैयार हो गये। हम कौपीन, अंगवस्त्र तथा कम्बल लेकर तैयार हुए। १८८६ ई. के अप्रैल महीने में वराहनगर के नौकाघाट से हम तीनों गंगा पार करके बाली की ओर चले। रास्ते के किनारे स्थित एक मोदी की दुकान के बरामदे में हमने वह रात बितायी। अगले दिन बड़े भोर में उठकर हम बाली स्टेशन पर गये और रेलगाड़ी में सवार हो गये। अगले दिन गयाधाम का दर्शन करके हम लोग बोधगया जा पहुँचे।"[१४]

उद्यान से निष्क्रमण

प्रियनाथ सिन्हा द्वारा लिपिबद्ध विवरण सम्भवत: सबसे प्राचीन तथा विस्तृत है – "चैत का महीना था। एक दिन शाम को करीब पाँच बजे शिवानन्द (तारक) तथा अभेदानन्द (काली) को साथ लेकर विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ) उद्यान के पश्चिमी ओर के छोटे द्वार से गोपनीयता के साथ बाहर निकले। तीनों पैदल ही आलमबाजार के घाट पर जाकर नाव द्वारा गंगा पार करके बाली स्टेशन जा पहुँचे। वहाँ पूछताछ से पता चला कि गया जाने की सुविधाजनक गाड़ी अगले दिन प्रात:काल ही मिल सकेगी। वह रात उन लोगों ने पास के एक दुकान में जाकर बिताई। रात में भोर होने के पहले ही तीन बजे सबको उठाकर खिचड़ी बनाने और खाने के बाद वे लोग फिर स्टेशन पर आकर ट्रेन में सवार हुए। रात को बारह बजे (पटना के निकटस्थ) बाँकीपुर में उतरकर स्टेशन के बाहर एक दुकान में विश्राम करने के बाद भोर के समय वे लोग गया की गाड़ी में चढ़े। विवेकानन्द के मुख से काशीपुर के उद्यान को छोड़कर अब बुद्धदेव, उनका अवर्णनीय त्याग-वैराग्य, सत्य-प्राप्ति के लिये उनकी तीव्र व्याकुलता, उनकी अति कठोर साधना और अन्तत: बहु-जन्म-दुर्लभ बोधि-ज्ञान या निर्वाण-प्राप्ति – इन्हीं सब विषयों के अलावा अन्य कोई बात नहीं निकल रही थी।"[१५]

यात्रामार्ग एवं तिथि-निर्धारण

गोंदिया के श्री देवाशिष राय ने पुराने ग्रन्थों के आधार पर हमें कुछ जानकारियाँ दी हैं, जिनके अनुसार इस यात्रा का एक आनुमानिक विवरण बनाया जा सकता है – उन दिनों हावड़ा से चलनेवाली गाड़ी – बाली, चन्दननगर, हुगली, बर्धमान, नलहाटी, तीनपहाड़, भागलपुर, लखीसराय, पटना, बाँकीपुर (हाल्ट) और जहानाबाद होते हुए गया तक जाती थी। यात्रा में लगभग दो दिन लग जाते थे। हमारा अनुमान है कि वे लोग १८८६ ई. के ३० मार्च की शाम को उद्यान-भवन से निकलकर बाली स्टेशन गये। रात वहीं बितायी। ३१ मार्च को सुबह की गाड़ी से बाँकीपुर (पटना) के लिये रवाना हुए। १ अप्रैल का दिन ट्रेन में बिताया। २ अप्रैल को सुबह बाँकीपुर में गाड़ी पकड़कर पूर्वाह्न में 'गया' पहुँचे। ३, ४ तथा ५ अप्रैल बोधगया में बिताया और ६ को गया आकर वापसी ट्रेन पकड़ी। ७-८ को यात्रा करके ९ अप्रैल को सुबह बाली स्टेशन पर उतरकर काशीपुर उद्यान-भवन में आ पहुँचे। जाने में दो दिन, आने में दो दिन, गया में एक दिन, बोधगया में ३ दिन और लौटते समय गया में १ दिन – इस प्रकार इस यात्रा में अनुमानत: कुल ९-१० दिन लगे थे।

पहला दिन – २ अप्रैल १८८६ (आनुमानिक)
गया और बोधगया

प्रियनाथ सिन्हा लिखते हैं, "ग्यारह बजे गया पहुँचकर स्वामीजी बोले, 'चलो, फल्गु (नदी) में स्नान कर लें।' स्टेशन से फल्गु तक का लगभग एक मील का रास्ता था। फल्गु नदी में बालू-ही-बालू दीख रहा था, बीच में पतली-सी धारा बह रही थी, घुटनों तक जल था – अत्यन्त स्वच्छ निर्मल। स्नान करते हुए विवेकानन्द फिर बोले, 'आओ, रामचन्द्र ने जैसे बालू का पिण्डदान किया था, वैसे ही हम लोग भी पिण्डदान करें।' सबने वैसा ही किया। इसके बाद उन लोगों ने पास के ही एक शिवालय में जाकर दाल-रोटी

१३. श्रीरामकृष्ण की अन्त्यलीला, स्वामी प्रभानन्द, नागपुर, पृ. ३७७; **१४.** आमार जीवन कथा (बँगला), सं. २००१, पृ. ९९; भक्तमालिका, भाग १, पृ. २४२-४३; **१५.** बुद्धगयाय विवेकानन्द (बँगला), प्रियनाथ सिन्हा, उद्बोधन, वर्ष ७, अंक १५, पृ. ४७६-७; स्मृतिर आलोय स्वामीजी, बँगला, पृ. २९९; अंग्रेजी 'ए काम्प्रिहेंसिव बायोग्रैफी', एस. एन. धर, खण्ड १, तृतीय सं. २००५, पृ. २३८-३९

बनाकर भोजन किया। थोड़ा विश्राम करने के बाद तीसरे पहर उन लोगों ने बोधगया की यात्रा की। लगभग चार कोस (१२ कि.मी.) पैदल चलकर वे लोग शाम के समय वहाँ जा पहुँचे और भोजन के बाद धर्मशाले में रात बितायी।''[१६]

दूसरा दिन, ३ अप्रैल १८८६ (आनुमानिक)
मन्दिर में ध्यान

अगले दिन सुबह वे लोग बोधि-मन्दिर का दर्शन करने गये। स्वामीजी ने ललित-विस्तर तथा अन्य बौद्धग्रन्थ भलीभाँति पढ़ लिये थे। उन सभी ग्रन्थों में बुद्धदेव की साधनावस्था के समय उनकी जैसी प्रगाढ़ सत्य-पिपासा आदि भावों के उद्रेक की बातें वर्णित हैं, बोधि-मन्दिर में पहुँचकर विवेकानन्द की स्मृति में वे सभी भाव मानो जीवन्त हो उठे। उनके संगियों को लगा कि मानो वे लोग बुद्धदेव के समकालीन व्यक्ति हैं; सभी पूरी तौर से बुद्धदेव के भाव में विभोर हो गये।'' इसके बाद, ''मन्दिर की पहले तल (दूसरी मंजिल?) पर स्थित उच्च पत्थर के आसन पर बुद्धदेव की जो ध्यानमूर्ति स्थापित है, विवेकानन्द अपने दोनों गुरुभाइयों के साथ उसी के सामने पद्मासन में बैठकर ध्यानमग्न हो गये।''[१७]

अभेदानन्द लिखते हैं, ''बोधगया पहुँचकर हम लोगों ने मन्दिर में प्रवेश किया। इसके बाद बुद्धमूर्ति का दर्शन करके उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। फिर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' आदि कहकर हम तीनों ध्यान करने बैठ गये। मन्दिर के भीतर का परिवेश इतना गम्भीर और शान्त था कि मन तत्काल समाधि-सागर में डूब जाय। ध्यान करते हुए हम अपूर्व निर्वाण-सुख के आभास तथा आनन्द का आस्वादन करने लगे।''[१८]

महन्तजी से परिचय

प्रियनाथ सिन्हा लिखते हैं, ''लगभग दो घण्टे तक ध्यान करने के बाद उन्होंने वहाँ आये हुए (मन्दिर के) महन्तजी[१९] के साथ धर्म के विषय में बहुत-सी बातें कहीं। स्वामीजी के साथ बातचीत से विशेष रूप से सन्तुष्ट होकर महन्तजी बोले, 'आप लोगों को जितने दिन इच्छा हो, यहाँ रहिये। भोजन आदि मठ में जाकर कर सकते हैं या फिर अनुमति हो तो यहाँ भी भिजवा सकता हूँ।' स्वामीजी बोले, 'हम लोग मठ में ही जाकर भोजन कर आयेंगे।' भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करने के बाद तीनों ने बोधि-मन्दिर के चारों ओर सारे दर्शनीय स्थान देखे। मठ तथा अन्य स्थान भी देखे।''[२०]

अभेदानन्दजी बताते हैं कि ध्यान के बाद उन तीनों ने निरंजना नदी में स्नान भी किया था।

तीसरा दिन, ४ अप्रैल १८८६ (आनुमानिक)
बोधिवृक्ष के नीचे ध्यान

ऐसा लगता है कि अगले दिन अपराह्न में तीनों बोधिवृक्ष के नीचे ध्यान करने बैठे थे। भगवान बुद्ध ने जिस स्थान पर बैठकर सिद्धि प्राप्त की थी, वहाँ सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित वज्रासन पर बैठकर तीनों ध्यान करने लगे। वे लोग काफी देर तक वहीं बैठकर ध्यान करते रहे। स्वामी ओंकारानन्द के पूछने पर शिवानन्दजी ने बताया था, ''वहाँ जाकर उसी बोधि-वृक्ष के नीचे हम लोग एक साथ ध्यान करने बैठे। बहुत अच्छा ध्यान जम गया था। इसी समय सहसा स्वामीजी भावावस्था में चिल्लाकर रो उठे और मुझे जोर से पकड़कर बैठ गये, मैं पास ही बैठा था। फिर कुछ देर बाद अपने आप ही, साधारण मनुष्य के समान प्रकृतिस्थ होकर स्वामीजी दुबारा गम्भीर ध्यान में मग्न हो गये। दूसरे दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने स्वामीजी से पूछा, तो उन्होंने बतलाया, 'मन में मैंने एक गम्भीर वेदना अनुभव की थी। मन में ऐसा हुआ कि यहाँ और तो सब कुछ रखा हुआ है – यहाँ बुद्धदेव का वह भाव घनीभूत होकर विद्यमान है। उनका त्याग, वैराग्य, उनकी वह महाप्राणता, उनकी वह गम्भीर आध्यात्मिकता सभी कुछ तो विद्यमान है। किन्तु वे स्वयं कहाँ हैं? इन सब भावों की घनीभूत मूर्ति वे बुद्धदेव कहाँ हैं? हृदय में बुद्धदेव का विरह इतना अनुभूत हुआ कि सँभाल न सका, रो पड़ा और आपको कसकर पकड़ लिया।''[२१] स्वामी निखिलानन्द द्वारा आलिंगन का कारण पूछने पर शिवानन्दजी ने बताया, ''स्वामीजी उस दिन गम्भीर ध्यान में डूब गये थे। भारतवर्ष के अतीत गौरव ने उनके मन को प्रचण्ड रूप से आन्दोलित कर दिया था। उस दिन भाव का आवेग न रोक सकने के कारण उन्होंने मुझे दोनों हाथों से जकड़ लिया था।''[२२] अन्य विवरण के अनुसार स्वामीजी ने बताया था, ''ध्यान करते समय मुझे स्पष्ट रूप से बुद्धदेव की उपस्थिति का बोध हुआ और मैंने प्रत्यक्ष देखा कि किस प्रकार उनके उदात्त उपदेशों ने भारतीय इतिहास को एक नया मोड़ दिया था; इन सब बातों का चिन्तन करते हुए मैं अपने भाव पर नियंत्रण खो बैठा।[२३]

स्वामी शिवानन्द ने स्वयं लिखा है – ''वहाँ पहुँच कर वे (नरेन्द्रनाथ) बुद्धदेव के सिद्धासन पर आसीन होकर गम्भीर ध्यान में डूब गये हम लोग भी उनके दोनों ओर ध्यान करने बैठे। थोड़ी देर तक गम्भीर ध्यान के बाद स्वामीजी सहसा

१६. तथा **१७.** वही; **१८.** आमार जीवन कथा (बँगला), पृ. ९९ **१९.** १८६७ में गोसाईं हेमनारायण गिरि बोधगया मठ के ११वें महन्त हुए। २७ दिस. १८९१ को उनके देहान्त पर गोसाईं कृष्णदयाल गिरि १२वें महन्त हुए। १८८६ ई. में स्वामीजी अपनी पहली यात्रा में गोसाईं हेमनारायण गिरि से और १९०१ ई. की दूसरी यात्रा में कृष्णदयाल गिरि से मिले। **२०.** बुद्धगयाय विवेकानन्द (बँगला), प्रियनाथ सिन्हा, पृ. ४७६-७; **२१.** आनन्दधाम की ओर, सं. २०११, पृ.१५३; भक्तमालिका, सं.१९८६, भाग १, पृ. २४२-३; युगनायक भाग १ पृ. १६३ **२२.** शिवानन्द-स्मृति-संग्रह, भाग १, पृ. ३० **२३.** स्वामी विवेकानन्द : एक जीवनी, निखिलानन्द, प्र.सं., पृ. ६५

एक बालक के समान फफक-फफककर, फिर ऊँचे स्वर में रो उठे और मुझे जकड़ लिया। तदुपरान्त वे पुन: ध्यानमग्न हो गये। बाद में जब उनकी सामान्य अवस्था हुई, तो इस तरह रुदन का कारण पूछे जाने पर उन्होंने कहा, ''ध्यान करते-करते मेरे मन में आया कि ज्ञान लाभ की आकांक्षा से महागुरु बुद्धदेव अपने राज्य, माता-पिता, रानी, राजकुमार सबको त्यागकर यहाँ आये और महाकठोर तपस्या एवं समाधि में निमग्न हो गये। अहा ! कहाँ हैं वे महापुरुष ! कहाँ हैं ! उन्हें देख कहीं नहीं पा रहा हूँ ! मन में तरह के विरह का आते ही वैसी अवस्था हो गयी थी।''[२४]

बोधिवृक्ष के नीचे ध्यान करते समय एक अन्य घटना भी हुई थी। स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं, ''नरेन्द्रनाथ ने एक अपूर्व ज्योति का दर्शन किया। मेरे पूरे शरीर में मानो एक शान्ति-स्रोत प्रवाहित होने लगा। तारकदादा भी गहरे ध्यान में निमग्न हो गये।''[२५] और स्वामी अद्भुतानन्द ने बताया था, ''सुना है कि लोरेनभाई (विवेकानन्द) ध्यान करते करते रो उठे थे और बगल में बैठे तारकदादा को जकड़ लिया। वहाँ पर लोरेनभाई ने तारकदादा की देह में एक ज्योति प्रवेश करते देखा था। कालीभाई तो वहाँ ध्यान में काठ जैसा होकर बैठा रहता था।[२६] महेन्द्रनाथ दत्त कहते हैं कि नरेन्द्रनाथ ने देखा कि बुद्धदेव के शरीर से एक ज्योति निकलकर शिवानन्द महाराज के शरीर में प्रविष्ट हो गयी, तभी से वे तारकनाथ को 'महापुरुष' कहने लगे।[२७]

प्रियनाथ सिन्हा के मतानुसार यह घटना सन्ध्या के समय हुई, क्योंकि उस समय बोधि-मन्दिर बिल्कुल निर्जन तथा निस्तब्ध हो गया था। गम्भीरानन्दजी बताते हैं कि वह पूरी रात ध्यान में ही बीती।[२८]

चौथा दिन, ५ अप्रैल १८८६ (आनुमानिक) महन्तजी का मठ देखना

बोधगया में बिताये गये इन तीन या चार दिनों के दौरान वे तीनों, दिन भर ध्यान, भ्रमण आदि करते और महन्तजी के धर्मशाले में भोजन तथा विश्राम करते।[२९]

''तीन दिन इसी प्रकार बोधि-मन्दिर में निवास करने के बाद एक दिन स्वामीजी (गया में) फल्गु नदी के पूर्वी तट पर महन्तजी का जो शाखा-मठ था, उसे देखने गये और वह रात वहीं निवास करके अगले दिन वे फिर बोधि-मन्दिर में लौट आये।[३०] उन लोगों की इच्छा थी – कुछ और दिन बोधगया में बिताएँ, परन्तु भिक्षा में प्राप्त मडुए की रोटियाँ नरेन्द्र के पेट को सहन नहीं हुई। फिर गरम कपड़ों के अभाव में नींद भी पूरी नहीं हो पाती थी।[३१] इस प्रसंग में स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं, ''फिर भिक्षा माँगकर कुछ जलपान करने के बाद वहाँ की धर्मशाला में जाकर विश्राम करने लगे। रात भी धर्मशाले में ही बितायी। हम लोगों के पास गरम वस्त्र नहीं थे, अत: रात में ठण्ड के कारण नींद नहीं आई। इसके अलावा, आधी रात के समय नरेन्द्र को पेट की शिकायत हुई। उन्होंने जो कुछ खाया था, शायद वह हजम नहीं हुआ था। दो-चार दस्त होने के बाद उन्हें उदरशूल से कष्ट होने लगा। इस पर हम लोग बड़े चिन्तित हुए। क्या करें – कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तब व्याकुल होकर हम लोग ठाकुर से प्रार्थना करने लगे। कुछ देर बाद हमने देखा कि नरेन्द्रनाथ थोड़ा स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं।[३२]

उसी समय उनके एक गुरुभाई बोले कि वे लोग पीड़ित गुरुदेव को बिना बताये चले आये हैं, इस कारण काशीपुर में सभी लोग उन लोगों के लिये उद्विग्न हो रहे होंगे। इस कारण अब वे उन लोगों का कलकत्ते लौट जाना ही उचित समझते हैं। स्वामीजी का मानो होशो-हवाश लौट आया। उन्होंने निद्रा से जागे हुए के समान उत्तर दिया, 'तो चल, पैदल ही कलकत्ते चलें – इससे कितने ही नये-नये दृश्य देखने को मिलेंगे, विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं से होकर गुजरना होगा, बहुत-सा ज्ञान प्राप्त होगा।' परन्तु फिर सोचने के बाद वे बोले कि पैदल लौटने में काफी समय लग सकता है और इससे सभी की उत्कण्ठा और भी बढ़ जायगी। इस कारण हमने ट्रेन से ही कलकत्ते लौटने का निर्णय लिया।''[३३]

''नरेन्द्रनाथ के पेट का रोग तब भी पूरी तौर से ठीक नहीं हुआ था और वहाँ किसी से कोई सहायता पाने की जरा भी उम्मीद नहीं थी। हमने देखा कि हमारे पास रेल का किराया भी नहीं है। इस प्रकार हम लोग बड़े धर्मसंकट में पड़े, कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें ! अत: हमें लगा कि हमें शीघ्र ही काशीपुर लौट जाना चाहिये, परन्तु लौटने के लिये कोई संसाधन हमारे पास नहीं था।''[३४]

२४. विवेक-ज्योति, वर्ष १९९२ अंक १, पृ. ६८ (यह स्मृतिकथा १९१९ ई. में प्रकाशित श्री महेन्द्रनाथ चौधरी के बंगला ग्रंथ 'विवेकानन्द चरित' की भूमिका के रूप में लिखी गयी थी। बाद में १९६३ ई. में रामकृष्ण मिशन शिक्षण मन्दिर, बेलूड़ मठ के मुख पत्र 'सन्दीपन' के विशेषांक में पुनमुद्रित हुआ।) **२५.** आमार जीवन कथा (बँगला), पृ. १००; **२६.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द, प्र.सं. पृ. १५७-५८; **२७.** (श्रीमत् विवेकानन्द स्वामीजीर जीवनेर घटनावली, ७म सं. २००७, खण्ड १, पृ. २२ ('श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका' ग्रन्थ में 'महापुरुष' नाम के विषय में भिन्न कथा है)। **२८.** युगनायक, १/१६४; भक्तमालिका, भाग १, पृ. २४२-४३; **२९.** Swami Abhedananda : A Spiritual Biography, Mony Bagachi, Calcutta, 1968, p. 97

३०. बुद्धगयाय विवेकानन्द (बँगला), प्रियनाथ सिन्हा, पृ. ४७६-७
३१. श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका, भाग १, पृ. २४२-४३; युगनायक १/१६४; **३२.** आमार जीवन कथा (बँगला), सं.२००१, पृ. १००;
३३. बुद्धगयाय विवेकानन्द (बँगला), प्रियनाथ सिन्हा, पृ. ४७६-७;
३४. आमार जीवन कथा (बँगला), सं. २००१, पृ. १००

पुनः महन्तजी के मठ में

स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं, "नरेन्द्रनाथ बोले, 'चलो, हम लोग बोधगया के महन्त से मिलें और उनसे कुछ धन की भिक्षा माँगें।' मैंने और तारकदादा ने सहमति व्यक्त की। सुबह हम लोगों ने चलकर निरंजना नदी के बालू का पाट पार किया। नदी का बालू इतना ठण्डा था कि हमारे नंगे पाँव मानो जले जा रहे थे। हमें यह ज्ञात नहीं था कि ठण्ड से भी आग के जैसी जलन होती है। बड़े कष्टपूर्वक चलते हुए निरंजना नदी को पार करके हम महन्तजी के मठ में उपस्थित हुए। मठ के दशनामी संन्यासियों के साथ हमारा वार्तालाप हुआ। उसके बाद वहाँ के साधुओं के साथ पंगत में बैठकर हम लोगों ने दोपहर का भोजन करके विश्राम किया। मठ के महन्त महाराज ने जब सुना कि नरेन्द्रनाथ संगीत के बड़े अनुरागी है, तो उन्होंने उनसे गाने का अनुरोध किया। नरेन्द्रनाथ यद्यपि पेट के रोग से बड़ी दुर्बलता का अनुभव कर रहे थे, तथापि उनके कण्ठ की तेजस्विता में कोई कमी नहीं आयी थी। उन्होंने कई भजन गाये। उनका अपूर्व गायन सुनकर महन्त महाराज बड़े प्रमुदित हुए। बाद में यह सुनकर कि हमारे पास राहखर्च नहीं है, उन्होंने कुछ धन भी दिया।"[३५]

पाँचवा दिन –
६ अप्रैल १८८६ (आनुमानिक)
लौटते समय गया में

स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं, "हम लोग पुन: निरंजना नदी को पार करके गया आये और गयाधाम के एक बंगाली सज्जन उमेशबाबू[३६] के घर अतिथि हुए। वहाँ संध्या के समय नरेन्द्रनाथ ने फिर भजन तथा शास्त्रीय संगीत गाये। वहाँ उनके अपूर्व गायन को सुनकर सभी लोग मुग्ध हो गये। उमेशबाबू ने हमारा विशेष यत्न करते हुए हमें रात में ठहरने का स्थान दिया।[३७] 'वचनामृत' से ज्ञात होता है कि वहाँ नरेन्द्रनाथ ने मृदंग के साथ ख्याल, ध्रुपद आदि गाये थे।"[३८]

उपेन बाबू ने भी राहखर्च के लिये कुछ रुपये दिये।[३९] अभेदानन्दजी लिखते हैं, "अगले दिन प्रात:काल हम लोग रेल में सवार होकर कलकत्ते की ओर रवाना हुए और उसके बाद वाले दिन शाम तक काशीपुर के उद्यान में जा पहुँचे।"[४०]

स्वामी शिवानन्द कहते हैं, "बुद्ध-गया में जितने दिन हम लोग रहे, बड़े आनन्द में रहे।"[४१] ❖ **(क्रमश:)** ❖

---

३५. आमार जीवन कथा (बँगला), सं. २००१, पृ. १००-१

३६. उमेश बाबू – उमेशचन्द्र सरकार (१८३७-१८९२) गया के सरकारी वकील थे। उन्होंने गया के 'पिता महेश्वरतला' मुहल्ले में १८७८ ई. में अपने निवास हेतु मकान (उमेश लॉज) बनवाया। बाद में उसके पास के मार्ग का नामकरण उनके नाम पर 'उमेशचन्द्र सरकार रोड' कर दिया गया। (श्रीरामकृष्ण परिक्रमा, खण्ड १, पृ. ५३-५४; द्र. विश्ववाणी, बँगला मासिक, वर्ष ४४, अंक ८, पृ. ३०३-०४)

३७. आमार जीवन कथा (बँगला), पृ. १०१; **३८.** 'वचनामृत', खण्ड २, पृ. ११४२; **३९.** धर, खण्ड १, पृ. २३९; **४०.** आमार जीवन कथा (बँगला), पृ. १००-१; **४१.** आनन्दधाम की ओर, नागपुर सं. २०११, पृ. १५३

हमारा न्यारा हिन्दुस्तान

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

सब देशों में सबसे बढ़कर
न्यारा हिन्दुस्तान।
हमको लगता प्राणों से भी
प्यारा हिन्दुस्तान।।

भारत भी है इसी देश का
परम पुरातन नाम,
इसकी धरती, नदियाँ, पर्वत
सब हैं अति अभिराम,
महाकाल से भी न आज तक
हारा हिन्दुस्तान।। हमको.

अखिल विश्व में गौरवमय है
इसका ही इतिहास,
मानवता की आदि भूमि यह
मानव का उल्लास।
रहा बहाता सत्य-धर्म की
धारा हिन्दुस्तान।। हमको.

चाहे जो भी शरणागत हो,
उसका करता त्राण,
त्याग-तपस्या-शौर्य-सलिल से
सिंचित इसके प्राण।
पुण्य प्रकृति से सदा मनोहर
सारा हिन्दुस्तान।। हमको.

इसकी रक्षा में तत्पर हम
देंगे जीवन दान,
हम चमकेंगे बनकर इसके
अम्बर का दिनमान।
जग में जगमग होता रहे
हमारा हिन्दुस्तान।।

हमको लगता प्राणों से भी
प्यारा हिन्दुस्तान।।
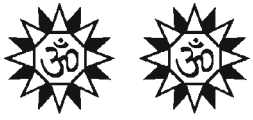
स्वामी प्रेमानन्द के संग में (२०)
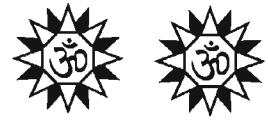
(बाबूराम महाराज के नाम से सुपरिचित स्वामी प्रेमानन्दजी श्रीरामकृष्ण देव के एक प्रमुख शिष्य थे। वे बेलूड़ मठ के सर्वप्रथम व्यवस्थापक थे। मठ के मन्दिर में वे पूजा भी किया करते थे। स्वामी ओंकारेश्वरानन्द ने बँगला भाषा में हुए उनके अनेक वार्तालापों को लिपिबद्ध कर लिया तथा ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कराया था। वहीं से इनका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

५. त्याग और वैराग्य ही धर्म की नींव है

बातचीत में किसी का प्रसंग उठने पर महापुरुष महाराज बोले, "अमुक व्यक्ति धर्म के बारे में भला क्या जानता है? दो-चार पुस्तकें लिखने या अच्छा व्याख्यान देने से ही कोई धार्मिक नहीं हो जाता। यह सब तो इन्द्रियों की उत्तेजना मात्र है। यही क्या धर्म है? यह भी एक तरह का इन्द्रिय-सुख है। जिसमें त्याग-वैराग्य नहीं, उसे धर्मशिक्षक मानना भूल है। त्याग-वैराग्य पर ही धर्म की नींव टिकी है। नहीं तो धर्म का तात्पर्य ही क्या है? स्वामी प्रज्ञानन्द ने 'प्रबुद्ध भारत' में अच्छा लेख लिखा है। कोई-कोई कहता है कि संसार में स्त्री-पुत्र को लेकर जैसा धर्म होता है, वैसा अन्य किसी तरह से नहीं होता। संसार में रहकर धर्म की प्राप्ति क्या सहज है? धर्म से मेरा तात्पर्य मोक्षधर्म से है। ब्राह्मसमाज में चर्चा उठी थी कि बेलूड़ मठ में बहुत लोग जाते हैं। यहाँ क्यों नहीं आते? समाज के एक वरिष्ठ आचार्य ने कहा था कि समाज में महिलाओं का गाना शुरू करें, तो बहुत लोग आयेंगे। पर शिवनाथ शास्त्री बोले – बेलूड़ मठ के समान त्याग-वैराग्य दिखा पाने से समाज में भी लोग आयेंगे।"

स्वामी ब्रह्मानन्द – "शिवनाथ शास्त्री महाशय में सत्य के प्रति आकर्षण है। उन्होंने ही भगवत्प्राप्ति के लिए सच्ची चेष्टा की थी। भुवनेश्वर में वे एक स्कूल इंस्पेक्टर के घर रहते हैं, खूब साधन-भजन करते है, उन्हीं के भीतर कुछ है। जो भी हो, उन्होंने समझा है, ठाकुर का थोड़ा संग मिला था न! समाज में एकमात्र विजयकृष्ण गोस्वामी ही बड़े अच्छे आदमी थे। उनमें भगवान के लिए अनुराग, भक्ति, विश्वास, सत्य के प्रति आकर्षण खूब था। उनके ब्राह्मसमाज छोड़ देने से उस समाज को बड़ी क्षति पहुँची है।"

महापुरुष महाराज – "स्वामीजी, मैं तथा गंगाधर एक दिन दक्षिणेश्वर से नाव में भोटबागान जा रहे थे। नाव में स्वामीजी देवेन्द्रनाथ ठाकुर की खूब प्रशंसा कर रहे थे। तभी देखने में आया कि दूर महर्षि का बजरा चला जा रहा है। महर्षि बजरे की छत पर और एक कर्मचारी सीढ़ी पर बैठे हुए थे। हमने बजरे में जाकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने हमारा परिचय पूछा। परिचय पाकर बड़े आनन्दित होकर वे बोले – उन (ठाकुर) की क्या ही भक्ति थी! क्या प्रेम था! ये दो बातें ही वे बारम्बार कहने लगे। स्वामीजी के साथ उनकी बहुत बातें हुईं। स्वामीजी ने उपनिषद से अनेक श्लोकों की आवृत्ति की। महर्षि बोले – मैं भक्ति ही अधिक समझता हूँ, अद्वैतवाद उतना नहीं समझता।"

बाबूराम महाराज – "शिवनाथ शास्त्री आदि किसी-किसी के समक्ष ठाकुर बालक जैसे कहते – क्यों जी, क्या मैं पागल हो गया हूँ, क्या मेरा सिर फिर गया है! इसीलिए किसी - किसी ब्राह्म भक्त की धारणा है कि वे शायद पागल थे।"

ब्रह्मानन्द महाराज – "जौहरी ही रत्न को पहचानता है। एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति को कहीं एक रत्न पड़ा हुआ मिल गया। वह उसकी कीमत नहीं जानता था। वह उस रत्न को लेकर साग-भाजी खरीदने गया। दुकानदार ने कहा – इसके बदले में एक आने का शाक दे सकूँगा। उस आदमी द्वारा चार आने का शाक माँगने पर दुकानदार राजी नहीं हुआ। रत्न को लेकर वह चावल की दुकान पर गया। दुकानदार ने कहा कि वह एक मन चावल दे सकेगा। उसके चार मन माँगने पर दुकानदार ने स्वीकार नहीं किया। इसके बाद वह आदमी सुनार की दुकान पर गया। सुनार ने उसे उलट-पलट कर देखा और कहा कि वह सौ रुपये देगा। उस आदमी का लोभ बढ़ गया। वह उसे लेकर एक नये जौहरी के पास गया। उसने उस रत्न का मूल्य बीस हजार रुपये बताया। अन्त में नगर के सबसे पक्के जौहरी के पास जाने पर, वह अत्यन्त विस्मित होकर बोला – ऐं, यह तुम्हें कहाँ मिला जी? इसका मूल्य तो एक करोड़ है!

"इसी प्रकार जिसकी जैसी समझ है, वह वैसा बोलता है। परमहंसदेव को कोई साधु कहता, कोई सिद्ध कहता, कोई पागल कहता, कोई भक्त कहता और कोई कहता है अवतार। जिसकी जैसी धारणा, वह वैसा ही बोलता।"

धर्म चारों युगों में एक ही है

१. त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः

आज शनिवार, १८ मार्च, १९१६ ई. का दिन है। पूजनीय बाबूराम महाराज को बुखार आया था। आज भी बुखार है; वे लावा-दूध का पथ्य ले रहे हैं। अपराह्न के समय महाराज गंगा के किनारे पोस्ते पर एक तख्त के ऊपर आसीन हुए। साथ में ब्रह्मचैतन्य, गिरिजानन्द, धर्मानन्द और एक अन्य साधु आकर तख्त के किनारे घास पर बैठ गये।

बाबूराम महाराज – "भारतवर्ष तपोभूमि है, त्यागभूमि है, सर्वत्यागी शिव भारत के उपास्य हैं। वे स्वयं महेश हैं,

उनके पुत्र सर्व-सिद्धि-दाता गणेश हैं, जिनके मित्र कुबेर हैं, जिनके ससुर नगेश हैं, जो जगत् के कल्याण हेतु सर्वत्यागी श्मशानवासी भस्मधारी ऊर्ध्वरेता हैं। कितने युगों से भारतवासी, चाहे गृही हो या संन्यासी, इन्हीं शिव के इस त्याग की उपासना करता चला आया है। विभिन्न घात-प्रतिघातों के फलस्वरूप जब भारत में इस त्याग तथा सेवा का भाव लुप्तप्राय हो गया था, तब हमारे ठाकुर और शिवावतार स्वामी विवेकानन्द आये। देखो न, वे शिव के ही समान त्यागी, वैराग्यवान, ऊर्ध्वरेता, समाधिवान, निर्भीक, परहितकामी और फिर सुपुरुष हैं; एक ही आधार में कितने गुण हैं! इसीलिए ठाकुर कहा करते थे – वह (नरेन) साक्षात् शिव है, जीवशिक्षा के लिए देह धारण करके आया है।

ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी आदि लोग एक-एक दिक्पाल महारथी थे। उन दिनों पूरी दुनिया में केशव बाबू का नाम था। ठाकुर उनके सामने ही नरेन्द्र को दिखाकर कहते – इस लड़के के भीतर ज्ञान की अट्ठारह ज्योतियाँ जल रही हैं। यह (नरेन) जिधर भी जायेगा, उधर ही कुछ कर डालेगा। नरेन की ऐसी प्रशंसा करने पर एक दिन केशव बाबू ने ठाकुर से कहा, 'नरेन को रासफूल खाने में अभी काफी देर है।' ''

एक साधु – रासफूल खाना क्या है, महाराज?

बाबूराम महाराज – ''देखा है न, रासलीला के समय श्रीकृष्ण के रासमंच को सोले के फूलों आदि से सजाते हैं! उन सोले के फूलों को ही रासफूल कहते हैं। बकरी का एक बच्चा अपनी माँ से कह रहा था – माँ, मेरी रासफूल खाने की इच्छा हो रही है। माँ ने उत्तर दिया – अभी तो आश्विन मास शुरू हुआ है, अभी दुर्गापूजा, कालीपूजा और जगद्धात्री पूजा बाकी है; पहले इन संकटों से बचो, उसके बाद रासफूल खाओगे। रास में अभी बहुत देरी है। उन अवसरों पर बलि होती है; कौन जाने किसके भाग्य में बलि होना लिखा है?

''मेरी इच्छा है कि स्वामीजी के पूर्वाश्रम का मकान खरीदकर, वहाँ एक शिव-मन्दिर, एक विशाल नाट्य-मन्दिर या हॉल तथा ग्रन्थालय स्थापित हो और वहाँ ठाकुर-स्वामीजी का नाम, भजन, ध्यान, पाठ, व्यायाम, व्याख्यान आदि हों। स्कूल-कॉलेज के लड़के वहाँ जायेंगे। इच्छा होते ही वे लोग मठ में नहीं आ पाते। कलकत्ते में उसी प्रकार का एक स्थान होने से उन लोगों के लिए अच्छा होगा। शिक्षित युवकों में ठाकुर-स्वामीजी के भाव का जितना ही प्रचार होगा, उतना ही उनका तथा देश का सर्वांगीण कल्याण होगा।''

२. जीवन का उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है

संध्या हो गयी है। ठाकुर की आरती की मधुर घण्टाध्वनि हो रही है। आरती समाप्त हो जाने पर महाराज ने हाथ जोड़ कर ठाकुर तथा दक्षिणेश्वर की ओर भवतारिणी को प्रणाम किया। आज शुक्ल चतुर्दशी या पूर्णिमा होगी। सामने कल-कल ध्वनि के साथ भागीरथी प्रवाहित हो रही हैं; सिर पर अनन्त नीलाकाश में नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे हैं; मठ, मन्दिर, पोस्ता, पेड़-पौधे आदि शुभ्र चाँदनी में पुलकित हैं। महाराज चौकी के ऊपर अर्धशायित हैं।

आज प्रातःकाल पूजनीय कालीकृष्ण महाराज (स्वामी विरजानन्द) तथा श्रीमती सेवियर बेलूड़ मठ में आये हैं। वे लोग अतिथि-निवास में ठहरे हैं।

बाबूराम महाराज – ''कालीकृष्ण इस तरह का पोस्ता स्वामीजी के मन्दिर तक बनवाने को कह रहा था। मैं बोला – पोस्ते-वोस्ते से क्या होने-जाने वाला है! तुम लोग मनुष्य बनो, उसी से सब हो जायगा।

(बैठे साधुओं के प्रति) ''जीवन का उद्देश्य है भगवान की प्राप्ति, उनका दर्शन। उसी उद्देश्य के लिए तो घर-द्वार छूटा है! वही उद्देश्य जिससे सफल हो, भगवत्प्राप्ति हो, उनमें प्रेम-भक्ति-विश्वास हो, उसी के लिए प्रयास करो। इसी प्रकार से जीवन गढ़ डालो। यदि ऐसा नहीं किया, तो फिर घर-द्वार छोड़कर यहाँ क्यों आये? वे हमारे प्राणों के भी प्राण हैं, आत्मा की भी आत्मा हैं, हमारे हृदय के स्वामी हैं, अपने आप से भी अपने हैं। उन्हें पाना ही होगा, नहीं पाने से काम नहीं चलेगा – इस तरह की तीव्र व्याकुलता चाहिए। भगवान के लीलापार्षद नित्यसिद्ध परमहंस-स्वभाव इन सब (स्वामी ब्रह्मानन्द आदि) महाराजों का संग तथा सेवा करने को मिल रहा है, यही क्या कम सौभाग्य की बात है, भाई! यहाँ (मठ में) रह पाना भी कम सौभाग्य की बात नहीं है! ऐसा मौका खो मत। तुम लोग मनुष्य हो, देवता बनो। तुम्हारा जीवन देखकर लोग सीखें। जीवन के द्वारा दिखाये बिना, केवल व्याख्यान से लोकशिक्षा नहीं होती। लोग इस कान से सुनेंगे और उस कान से बाहर निकल जायगा।

थोड़ी देर महाराज चुप रहे। उसके बाद फिर कहने लगे, ''मैं भलीभाँति देख रहा हूँ, हमारे चले जाने पर, कितने लोग तुम्हारे पास आयेंगे! (साधुओं के प्रति) ''मठ में भक्तों की संख्या क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। देख रहे हो न, उस स्थान से अब और नहीं चलेगा। भोजन का स्थान बढ़ाना पड़ेगा। यह सब तुम लोगों के लिए रहा, बाद में करोगे।''

गिरिजानन्द – आप लोगों के रहते-रहते नहीं हुआ, बाद में कौन हम लोगों को मानेगा?

बाबूराम महाराज – ''तुम लोग क्या अपने को कम समझ रहे हो? श्रीमाँ के जो पुत्र हैं, वे क्या ठाकुर की सन्तानों से कम हैं? क्या ऐसा समझते हो कि लोग हमारी चरणधूलि लेते हैं, इस कारण हम लोग खूब बड़े हो गये

हैं? हम लोग ठाकुर को देखकर आये हैं और तुम लोग बिना देखे ही आये हो, तुम लोग तो हमसे भी बड़े हो।''

गिरिजानन्द – ठाकुर आप लोगों को बड़ा कर गये हैं।

बाबूराम महाराज – ''वे हम लोगों को बड़ा नहीं कर गये, बल्कि छोटा कर गये हैं। तुम लोग भी छोटे होना, मन के भीतर से अहंकार आदि को बिल्कुल भगा देना। ठाकुर कहा करते थे, 'मैं मरा कि जंजाल दूर हुआ।' नाहं, नाहं, नाहं, तूँही, तूँही, तूँही। नाग महाशय की जीवनी देख न! क्या ही दीन-हीन भाव है! स्वामीजी सारा जगत् घूमकर आने के बाद बोले, 'नाग महाशय जैसा निरहंकारी मनुष्य दूसरा कोई नहीं मिला।' नाग महाशय का जीवन आदर्श बना ले। गिरीश बाबू कहा करते थे, 'नाग महाशय को जब महामाया बाँधने गयी, तो वे छोटे हो गये; महामाया अपने जाल के छेद जितने छोटे करती, वे भी उतने ही छोटे होते जाते; आखिरकार महामाया उन्हें बाँध नहीं सकीं। परन्तु महामाया जब स्वामीजी को बाँधने गयीं, तो वे क्रमश: इतने बड़े होने लगे कि जाल पूरा ही नहीं पड़ा।'

''जाल क्या है, जानते हो? विषय, स्त्री, रुपये-पैसे, नाम -यश, लज्जा, घृणा, भय, अहंकार, अभिमान, स्वार्थपरता – यही सब जाल है। महामाया ने इन्हीं सब के द्वारा मनुष्य के मन को कैसे बाँध रखा है! इसी जाल को काट पाने पर मन सीधे भगवान की ओर दौड़ जायगा। मनुष्य मन से ही बद्ध है और मन से ही मुक्त है। इस जाल में ब्रह्मा-विष्णु तक पड़कर गोते खाया करते हैं।''

इतना कहकर महाराज धीरे धीरे गाने लगे – ''महामाया की कैसी विचित्र माया है! उन्होंने कैसे भ्रम में डाल रखा है! उनके प्रभाव से ब्रह्मा-विष्णु तक अचेत हो रहे हैं, तो जीव बेचारा भला क्या जान सकता है? मछली जाल में पकड़ी जाती है, आने-जाने की राह है, तो भी वह उसमें से भाग नहीं सकती। रेशम के कीड़े रेशम के कोये बनाते हैं; वे चाहें तो उसे काटकर उससे निकल सकते हैं, परन्तु महामाया के प्रभाव से वे इस तरह बद्ध हैं कि अपने बनाये हुए कोयों में ही अपनी जान दे देते हैं।'

''संसारी लोग विषय, नाम, यश, अहंकार, कामिनी-कांचन – यही लेकर मतवाले हो रहे हैं। हमें निष्काम कर्म, भाव, भक्ति, प्रेम, समाधि लेकर मतवाले होना होगा।

''विषयी लोगों को होश नहीं कि वे जाल में पड़े हुए हैं और उस जाल के साथ ही संसार-पंक में मुख दबाए पड़े हुए हैं। एक दिन मछुआरा आकर जाल खींचते हुए कामना का संसार तोड़कर कीचड़ से बाहर निकालेगा – यही बोध जिनको नहीं हुआ है, वे बद्ध जीव हैं। और जो लोग जाल को काटकर बाहर निकलने का प्रयास कर रहे हैं, वे मुमुक्षु जीव हैं। तुम लोग मुमुक्षु हो; संसार से निकलकर यहाँ आ पड़े हो, यह कम भाग्य की बात नहीं है; इसके अतिरिक्त नित्यमुक्त ईश्वरकोटि महापुरुषों का संग पा रहे हो, यह भी अतीव दुर्लभ है। **दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् , मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रय:** – जगत् में तीन चीजें अत्यन्त दुर्लभ हैं – मनुष्य देहधारण, मुमुक्षा और महापुरुषों का संग; ईश्वर के अनुग्रह से ही इनकी प्राप्ति होती है। इसीलिए कह रहा था कि तुम लोग भी क्या कम हो? ऐसा गंगा के किनारे निवास! ऐसा पवित्र संग! यह तो वैकुण्ठ है!

''गृहस्थों में भी अनेक मुमुक्षु हैं, जो भगवान की प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं। परन्तु उन लोगों की अपेक्षा भी तुम लोगों को सुयोग-सुविधा काफी अधिक है। वे लोग काजल के घर में निवास करते हैं। ठाकुर कहा करते थे कि ऐसे कमरे में रहने पर थोड़ी-बहुत कालिमा लग ही जाती है। **'काजल के घर में जितना भी सयाना रहे। थोड़ा बूँद लागे पर लागे, काम जागे पर जागे**।' जो लोग बचपन से ही संसार से भागकर यहाँ आये हैं, वे विशुद्ध कुलीन हैं। ठाकुर कहते थे – जिन लोगों ने स्त्रीसुख का त्याग किया है, उसका तो जगत्-सुख त्याग हो गया है। **स्त्रीयं त्यक्त्वा जगत्यक्तं जगत्यक्त्वा सुखी भवेत्**। तुम लोग जगत्-सुख का त्याग करके यहाँ आये हो, अब मन की गाँठ को काट डालो, मन से काम-कांचन का त्याग करो। तुम्हारे मन में लेशमात्र भी स्वार्थ न घुसने पाये।

''गीता, उपनिषद्, सांख्य, पातंजल आदि सब पढ़कर यदि तदनुसार जीवन न गढ़ सको, कम-से-कम उसका एक भाव भी जीवन में रूपायित न कर सको, तो फिर उन सब को दूर फेंक डालो। उन सबको पढ़कर केवल पण्डिताई दिखाना, गेरुआ पहनकर अभिमान-अहंकार बढ़ाना – क्या इसी के लिये यहाँ आये हो? **वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्र-व्याख्यान-कौशलम् ; वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।** शास्त्र-व्याख्या का कौशल विद्वानों के भोग के लिए है। यह एक तरह का सूक्ष्म जाल है। इससे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। प्राण को वास्तविक शान्ति नहीं मिलती। ठाकुर कहा करते थे – ग्रन्थ नहीं, ग्रन्थि। जो जितने परीक्षा 'पास' है, उसके उतने पाश हैं। केवल गीता-उपनिषद् पढ़कर कुछ नहीं होगा, उसे जीवन में रूपायित करना होगा।

''तो भी मन जब इधर-उधर जायेगा, तब शास्त्र आदि की चर्चा करना अच्छा है। पर मैं तो भक्तों को लेकर रहता हूँ। उनसे ठाकुर की बातें ही कहता हूँ। जानता हूँ कि इससे मेरी जीभ, मुख और सारा शरीर पवित्र हो जाता है।

''ठाकुर कहा करते थे – नवाबी काल का सिक्का इस काल में नहीं चलता। मनुष्यों की रीति-नीति, शिक्षा, आचार,

(शेष अगले पृष्ठ पर नीचे)

स्वामी बोधानन्द (२)

स्वामी अब्जजानन्द

(स्वामी विवेकानन्द के अल्पावधि जीवन-काल में अनेक नर-नारी उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आये। कुछ युवकों ने उन्हीं के चरणचिह्नों पर चलते हुए त्याग-संन्यास का जीवन भी अंगीकार किया था। प्रस्तुत है स्वामीजी के उन्हीं संन्यासी शिष्यों में से कुछ की जीवन-गाथा। इसे बँगला ग्रन्थ 'स्वामीजीर पदप्रान्ते' से लिया गया है। हिन्दी अनुवाद में कहीं-कहीं अंग्रेजी संस्करण से भी सहायता ली गयी है। – सं.)

१८९७ ई. का फरवरी माह। स्वामी विवेकानन्द पश्चिमी देशों की अपनी पहली वेदान्त-प्रचार यात्रा सम्पन्न करके कलकत्ते लौट आये थे। वे आलमबाजार मठ के पास ही गोपाल लाल शील के भवन में रहकर साधु-भक्तों तथा जिज्ञासु दर्शनार्थियों – सभी में निरन्तर प्रेरणा तथा उपदेश आदि का वितरण कर रहे थे। उस दिन भगवान श्रीरामकृष्ण का पुण्य जन्मोत्सव था। फरवरी का अन्तिम या मार्च के प्रारम्भ का कोई रविवार रहा होगा। तत्सम्बन्धित सार्वजनिक उत्सव उन दिनों दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर के परिसर में अनुष्ठित हुआ करता था। हरिपद इस उत्सव में भाग लेने के उद्देश्य से ही पिछले दिन अर्थात् शनिवार की रात को ही आलमबाजार मठ में चले आये। बड़े सबेरे उठकर वे स्वामीजी का दर्शन करने की इच्छा से चल पड़े। स्वामीजी ने भी मकान की खिड़की से आगन्तुक युवक को देखा और नीचे उतरकर दरवाजा खोल दिया। सर्दियों के मौसम, उषाकाल का समय – अरुणोदय होने ही वाला था। इस शान्त पवित्र उषा के क्षण में गुरु-शिष्य के प्रथम मिलन का यह चित्र बड़ा ही सार्थक था। हरिपद को लगा था मानो साक्षात् तिमिरान्तक दिवाकर ही उनके समक्ष आकर दण्डायमान हो गये हों! देहधारी भुवन-भास्कर को साष्टांग प्रणाम करते ही उन्होंने अत्यन्त परिचित के समान हरिपद को अपने निकट खींच लिया। स्वामी शिवानन्दजी भी पास में ही थे। उनके द्वारा हरिपद का परिचय करा देने पर, मानो अनेक जन्मों की घनिष्ठता दिखाते हुए स्वामीजी अत्यन्त आत्मीयता के साथ बोल उठे, "वत्स, मैं तुम्हें सच्चा संन्यासी बनाऊँगा। क्या तुम मेरे लिये एक गिलास पानी ला सकोगे?" वह दिन हरिपद के जीवन का वास्तविक नव प्रभात सिद्ध हुआ – अन्धकार-नाश का परम आश्वासन पाकर वे आनन्द, गौरव तथा कृतज्ञता के भाव से स्तब्ध होकर रह गये।

उत्सव के लिये मठ जाने को तैयार होते समय स्वामीजी हरिपद से बोले, "मैं मठ जा रहा हूँ। तुम भी मेरे साथ चल सकते हो।" हरिपद संकोच के साथ बोले, "मैं पैदल जाऊँगा।" उत्तर में स्वामीजी पुन: बोले, "नहीं, तुम गाड़ी की छत पर बैठकर जाओगे।" उस दिन उन्हें स्वामीजी के साथ एक गाड़ी में बैठकर मठ में जाने का सौभाग्य मिला था।

सुबह के करीब आठ बजे स्वामीजी मठ पहुँचे और स्नान आदि के बाद मन्दिर में जाकर ध्यानमग्न हो गये। हरिपद ने भी उन्हीं का अनुसरण किया और स्वामीजी के बगल में बैठने का दुर्लभ सुयोग पाकर स्वयं को धन्य माना। इसके बाद लगभग ग्यारह बजे स्वामीजी सभी लोगों के साथ दक्षिणेश्वर के उत्सव-भूमि में गये। उनके पदार्पण से जन-समुद्र में मानो हिलोरें उठने लगी थीं। हजारों लोग उनकी एक झलक मात्र पाने के लिये चंचल हो उठे। दो-तीन बार प्रयास करके भी स्वामीजी लोगों के बीच स्थिर भाव से खड़े होकर कुछ बोल नहीं सके। अस्तु, करीब एक बजे वे मठ लौट आये। उस दिन हरिपद को सारे समय स्वामीजी का खूब साहचर्य मिला था। इसी दिन की स्मृति के प्रसंग में स्वामी बोधानन्द कहा करते थे कि वह उनके जीवन का सर्वाधिक गौरवपूर्ण दिन था। उनके स्मृति-पटल पर वह चित्र सदा के लिये अमिट रूप से अंकित हो गया था। परवर्ती काल में उस दिन का स्मरण करते हुए वे रोमांचपूर्ण आनन्द से अभिभूत हो जाया करते थे, "That was a glorious day of my life. It is indelibly impressed on my mind. As I think of it now, I can still feel the thrill of joy I felt then."*

पिछले पृष्ठ का शेषांश

व्यवहार आदि युग युग में बदलते रहने पर भी धर्म के मूलतत्त्व सदा-सर्वदा एक ही रहते हैं। भाई, वही सत्यनिष्ठा, वही त्याग, वही पवित्रता, वही वैराग्य, वही अहंशून्यता सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि – चारों युगों में ही समान है। केवल खोल – आचार ही बदल जाता है। ठाकुर के श्रीमुख से हमने बारम्बार सुना है – जो राम रूप में आये थे, जो कृष्ण रूप में आये थे, वे ही अब रामकृष्ण रूप में आये हैं, केवल खोल ही अलग है।

"भवन-निर्माण करने के लिए सामने एक नक्सा रखना पड़ता है। जीवन-गठन के समय भी वैसा ही समझना। गृही हो या संन्यासी, ठाकुर ही इस युग में सबके आदर्श हैं। पहले उसी आदर्श के अनुसार अपना जीवन गठन कर डालो। उसके बाद लोकशिक्षा देना। घर में नहीं दाने, अम्मा चली भुनाने! पहले आदेश पा लो, फिर उपदेश देना।

"ठाकुर कितने मनोयोग के साथ शास्त्र सुनते और ठीक-ठीक उसके अनुसार चला करते थे।" ❑❑❑

स्वामीजी के पुण्य दर्शन की स्मृति को हृदय में सँजोये हरिपद घर लौट आये और पुन: विद्यालय के काम-काज में लग गये, परन्तु उनका मन आलमबाजार मठ में ही पड़ा रहता। मठ में उनका आवागमन और भी बढ़ता गया। अब स्वामीजी के दर्शन तथा संग ने हरिपद के जीवन को आन्दोलित कर डाला। उन दिनों स्वामीजी ने मठ में नियम बना दिया था कि साधु-ब्रह्मचारी बारी-बारी से मन्दिर में जाकर रात भर जप-ध्यान करेंगे। जिस दिन हरिपद मठ में रात्रिवास करते, उस दिन उन्हें भी उसी प्रकार जप-ध्यान करना पड़ता था। एक बार विद्यालय में गर्मी की छुट्टियाँ होने पर, वे अन्यत्र कहीं भी नहीं गये और उन्होंने मठ में जाकर कुछ काल स्वामीजी के सान्निध्य में रहने के अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया था। इस काल के प्रत्येक दिन का चित्र उनके मानस-पटल पर चिर काल के लिये अंकित हो गया था।

एक दिन पूर्वाह्न के साढ़े दस बजे थे। साधु लोग मन्दिर में बैठकर ध्यान कर रहे थे। प्रेमानन्दजी के मन में इच्छा हुई कि आज स्वामीजी पूजा करें। उन्होंने आकर स्वामीजी से अनुरोध किया। वे तत्काल राजी हुए और गम्भीरतापूर्वक धीरे-धीरे जाकर पूजा के आसन पर बैठ गये। आसन पर बैठते ही उनका मन न जाने किस राज्य में जा पहुँचा और वे गहन ध्यान में तल्लीन हो गये। काफी काल तक इसी प्रकार ध्यानस्थ रहने के बाद, जब उनका मन क्रमश: बाह्य भूमि पर उतरा, तो उन्होंने पूजापात्र में जितने भी फूल थे, उन सब पर चन्दन छिड़क दिया। इसके बाद उन्होंने उन चन्दन-सिक्त पुष्पों को अंजलि में लेकर ठाकुर की वेदी पर, उनकी पादुकाओं पर तथा आत्माराम के कलश पर अर्पित किया। तदुपरान्त उन्होंने विभिन्न वर्ण के पुष्पों को प्रभु के समक्ष बड़ी सुन्दरता के साथ सजा दिया। इसके बाद उन्होंने बचे हुए पुष्पों को अपने ध्यानरत गुरुभाइयों तथा शिष्यों के मस्तक पर बरसा दिया। हरिपद को कभी ऐसी अपूर्व पूजाविधि देखने को नहीं मिली थी – न कोई उपचार, न कोई घण्टाध्वनि, न पूजा के उपकरणों का प्रयोग, न जल छिड़कना और न मुद्रा का प्रदर्शन! इस घटना से हरिपद के मन में यह दृढ़ विश्वास जम गया कि स्वामीजी अपने गुरुभाइयों तथा शिष्यों में प्रभु के ही अस्तित्व का अनुभव करते हैं। पूजा के अन्त में सभी साधु-ब्रह्मचारियों ने स्वामीजी को प्रणाम किया। वह क्या ही अभूतपूर्व दृश्य था!

इस मठवास की स्मृति हरिपद के जीवन में एक नवीन प्रेरणा का स्रोत बन गयी थी। स्वामीजी के सान्निध्य में उन्होंने अपने जीवन के लक्ष्य को और भी स्पष्ट रूप से देखने तथा समझने की क्षमता अर्जित कर ली थी। स्वामीजी के आदेश पर इन दिनों वे प्रतिदिन गीता के दस श्लोक कण्ठस्थ करते और स्वामीजी के समक्ष उनकी आवृत्ति करके सुनाते। अस्तु, जून के महीने में स्वामीजी अल्मोड़ा चले गये और ग्रीष्मावकाश समाप्त हो जाने के कारण हरिपद भी पुन: घर लौटकर विद्यालय के कार्य में लग गये। परन्तु घर में रहकर भी अब उनके लिये संसार में मन लगाना क्रमश: असम्भव होने लगा था। उनका चित्त वैराग्य की प्रचण्ड अग्नि से प्रदीप्त हो उठा था। आखिरकार १८९८ ई. के अन्त में, वे सदा के लिये संसार को त्यागकर मठ में चले आये। इसी दौरान मठ स्थानान्तरित होकर बेलूड़ के नीलाम्बर मुखोपाध्याय के किराये के मकान में आ चुका था। उसी वर्ष के नवम्बर में स्वामीजी अल्मोड़ा से काश्मीर होते हुए मठ लौट आये। वैराग्यवान तरुण ने उन्हीं से चरणों में आश्रय देने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने हरिपद को संन्यास की दीक्षा और स्वामी बोधानन्द नाम दिया।

उन दिनों मठ के सभी लोग साधन-भजन, शास्त्र-पाठ आदि में डूबे रहते थे। विशेषकर स्वयं स्वामीजी के मठ में निवास करने के कारण साधु-ब्रह्मचारियों के आनन्द की सीमा न थी – उन लोगों के आदर्श मानो साकार रूप में उनके साथ-साथ घूम-फिर रहे थे। बोधानन्द मठ के उस उद्दीपनापूर्ण परिवेश में रहकर स्वाध्याय तथा जप-ध्यान आदि में मन लगा रहे थे। इन्हीं दिनों स्वामीजी के आदेश पर उन्होंने नियमित रूप से सारदानन्दजी से गीता तथा ब्रह्मसूत्र का अध्ययन किया था। स्वामी सारदानन्द की शास्त्र-व्याख्या में बोधानन्द के अध्यात्म-जीवन को दिन-पर-दिन नये आलोक की उपलब्धि होती।

१९०० ई. के अप्रैल में बोधानन्द उत्तराखण्ड आदि की तीर्थयात्रा के लिये बाहर निकले। गुरुभाई प्रकाशानन्द के साथ उन्होंने नंगे-पाँव हिमालय के केदार-बदरी आदि दुर्गम तीर्थों की यात्रा की। इसके बाद वे कुछ काल तक ऋषीकेश तथा हरिद्वार में रहकर कठोर तपस्या में डूब गये। इसके बाद वे कुछ दिन कनखल में गुरुभाई कल्याणानन्द के साथ रहकर उनके द्वारा आरब्ध सेवा-कार्य में हाथ बँटाते रहे। उन दिनों भोजन आदि के लिये माधुकरी-भिक्षा का ही सहारा था। अस्तु, बोधानन्द के तपस्या-काल का अधिक भाग ऋषीकेश में ही बीता था। निरन्तर साधन-भजन तथा स्वाध्याय आदि ने उनके संन्यासी मन को और भी तेजस्वी तथा शक्तिशाली बना दिया था। उसी समय उन्हें समाचार मिला कि स्वामीजी जापानी विद्वान् ओकाकुरा को साथ लेकर वाराणसी आये हुए हैं। गुरुदेव के दर्शन की आकांक्षा से बोधानन्द का मन व्याकुल हो उठा और वे हरिद्वार से वाराणसी जा पहुँचे। अपने तपस्वी शिष्य के आगमन का समाचार पाकर स्वामीजी ने कहला भेजा था, "उसे सीधे मेरे पास आने को कहो। मैं उसे ऋषीकेश के वेश में ही देखना चाहता हूँ।"

* Prabuddha Bharata, October 1934

अपने प्रिय शिष्य को पाकर स्वामीजी अत्यन्त आनन्दित हुए थे और उन्होंने पूछकर तपस्या की सारी बातें विस्तार से जान लीं। इसके बाद वे बोल उठे, "तुम्हारे आने से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। एक महाराजा यहाँ पर एक आश्रम बनाने के लिये प्राथमिक व्यय-भार वहन करने को सहमत हैं। उस आश्रम का उत्तरदायित्व क्या तुम ग्रहण कर सकोगे?" बोधानन्द ने विनयपूर्वक अपनी अक्षमता व्यक्त की। वे बोले, "यहाँ पर मुझसे भी अधिक उपयुक्त ऐसे लोग हैं, जो शास्त्रों की भलीभाँति व्याख्या कर सकते हैं।" इस पर स्वामीजी बोले, "तुम दूसरों का अनुकरण मत करो। मैं कहता हूँ कि तुम आदर्शनिष्ठ जीवन यापन करते हुए स्वाभाविक रूप से कार्य किये जाओ। भाव आन्तरिक होने पर तुम्हें निश्चय ही सफलता मिलेगी।"

इसके बाद स्वामीजी बेलूड़ मठ लौटे और बोधानन्द को भी साथ ले गये। बोधानन्द ने एक बार फिर श्रीगुरु के पूत सान्निध्य में रहने का सौभाग्य पाकर स्वयं को खूब कृतार्थ महसूस किया। उनके दिन ध्यान-भजन तथा गुरुसेवा में बड़े आनन्दपूर्वक बीतने लगे। मठ के अन्य कार्यों में भी उनके उत्साह तथा निष्ठा में जरा भी कमी नहीं दिखायी पड़ी। एक बार जब मठ में कई दिनों तक मेहतर नहीं आया, तो बोधानन्द स्वयं ही मैले के बर्तन को सिर पर रखकर यथास्थान डाल आते और नियमित रूप से शौचालय की भी सफाई करते। शास्त्र-पाठ, ध्यान-धारणा तथा स्वामीजी की सेवा – तीनों को ही वे समान अनुभव करते।

स्वामीजी ने उन दिनों मठ में आदेश दे रखा था कि यदि कोई भोर में उठकर मन्दिर में जाकर ध्यान-जप में नहीं बैठेगा, तो उस दिन उसे बाहर भिक्षा माँगकर अपने भोजन की व्यवस्था करनी होगी। एक दिन किसी कारणवश बोधानन्द तथा अन्य किसी-किसी को मन्दिर जाने में देरी हुई थी। स्वामीजी का आदेश हुआ, "मठ में आज किसी को भोजन नहीं मिलेगा। सभी लोग कलकत्ते जाकर भिक्षा माँगें।" अपने इन प्रिय शिष्य को उन्होंने और भी विशेष रूप से कह दिया, "देखो, किसी सगे-सम्बन्धी के घर मत चले जाना।" बोधानन्द ने कलकत्ते जाकर गुरुदेव के आदेश का अक्षरशः पालन किया था। मार्ग में स्वामी त्रिगुणातीतानन्दजी से भेंट होने पर उन्होंने कुछ पैसे देना चाहा, परन्तु बोधानन्द ने उसे भी स्वीकार नहीं किया। भिक्षाटन से थके-मादे जब वे शाम को बेलूड़ मठ लौटे, तो घाट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि स्वामीजी मानो उन्हीं की प्रतीक्षा में वहाँ खड़े हैं। स्वामीजी ने जब बड़े प्रेम के साथ उन्हें बुलाकर भिक्षा के विषय में सारे अनुभव पूछे, तो क्षण भर में ही उनकी सारे दिन की क्लान्ति दूर हो गयी। गुरु तथा शिष्य के बीच क्या ही मधुर तथा अनिर्वचनीय सम्बन्ध था!

स्वामीजी के अति घनिष्ठ साहचर्य में निवास करने के फलस्वरूप बोधानन्द को उनके व्यक्तित्व के कई मधुर पहलुओं को प्रत्यक्ष देखने का सुयोग मिला था। वेदान्त के की साक्षात् प्रतिमूर्ति विवेकानन्द बेलूड़ में गंगातट पर खड़े होकर सुदूर दूसरे तट पर स्थित दक्षिणेश्वर के मन्दिरों को देखकर जिस प्रकार भाव-विभोर हो जाते, वह दृश्य बोधानन्द के मनश्चक्षुओं में सदा के लिये अंकित हो जाता। एक बार इसी प्रकार गंगातट पर टहलते हुए दक्षिणेश्वर की ओर उन्मुख होकर स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण पर बोलते हुए अपने विषय में भी बहुत कुछ कहा था – "मेरा बाहर से अद्वैत-वेदान्त का भाव है, परन्तु हृदय में भक्ति की धारा है और श्रीरामकृष्ण का इसके ठीक विपरीत था।" इसके बाद उन्होंने शिष्य बोधानन्द से हास्यपूर्वक कहा था, "देखो, उस निरक्षर ब्राह्मण-पुजारी के प्रेम का गुलाम होकर मैंने अपने जीवन के कितने उज्ज्वल भविष्य को नष्ट कर डाला है!" भुवन-विजयी विवेकानन्द के इस विनोदपूर्ण वाक्य ने बोधानन्द को विस्मय तथा आनन्द से अभिभूत कर दिया था। उस दिन स्वामीजी उनके हृदय में मानो मूर्तिमान विश्वास के रूप में प्रकट हुए थे। विमुग्ध बोधानन्द ने अपने गुरुदेव के मुख से सुना था, "ठाकुर अवतार थे, या उससे भी बड़े थे – यह तो मैं नहीं जानता। उनका वर्णन करने का कोई भी प्रयास उनकी महिमा को घटाता है।"

४ जुलाई १९०२ ई. को स्वामीजी ने महासमाधि में प्रवेश किया। गुरुदेव के महाप्रयाण से बोधानन्द का हृदय विह्वल हो उठा। इस प्रचण्ड शोक के आघात से उनका अन्तर मानो चूर्ण-विचूर्ण हो उठा। उस दिन अपराह्न में भी उन्होंने स्वामीजी के चरणों में बैठकर पाणिनी का संस्कृत व्याकरण पढ़ा था। परन्तु हाय, उस समय भला कौन जानता था कि स्थूल शरीर में वही उनका अन्तिम शिक्षा-दान था!
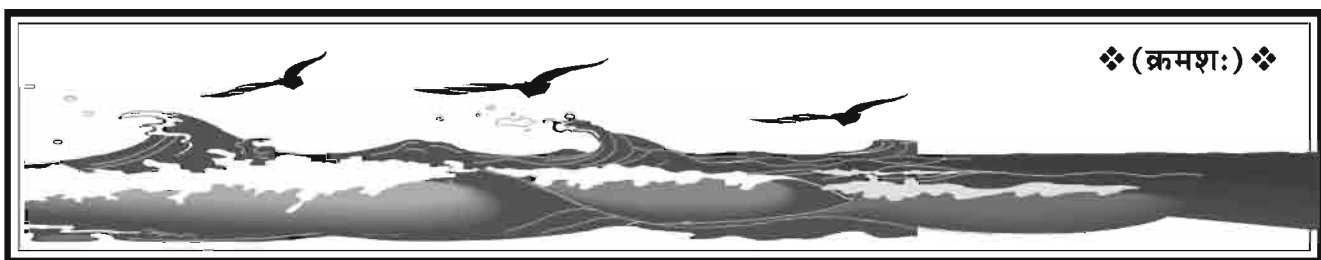
कठोपनिषद्-भाष्य (२०)

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बन्धित गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, इनमें उन्हीं का संकलन है। श्रीशंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। स्वामी विदेहात्मानन्द द्वारा किया हुआ कठोपनिषद्-भाष्य का सरल अनुवाद प्रस्तुत है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों का विच्छेद कर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

* * *

एवं पुरुषे आत्मनि सर्वं प्रविलाप्य, नाम-रूप-कर्म-त्रयं यत् मिथ्या-ज्ञान-विजृम्भितं क्रिया-कारक-फल-लक्षणं स्वात्म-याथात्म्य-ज्ञानेन मरीचि-उदक-रज्जु-सर्प-गगन-मलान्-इव मरीचि-रज्जु-गगन-स्वरूप-दर्शनेन एव स्वस्थः प्रशान्तः कृतकृत्यो भवति यतः, अतः तत्-दर्शनार्थम् –

भाष्य-अनुवाद – इस प्रकार पुरुष रूपी आत्मा में सब कुछ विलीन करने के बाद – जैसे मरु-मरीचिका में जल, रस्सी में सर्प और आकाश में मलिनता को मरीचिका, रस्सी तथा आकाश के स्वरूप-ज्ञान के द्वारा ही दूर किया जा सकता है; वैसे ही मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न (भासमान) – क्रिया, कारक तथा फल लक्षणवाले नाम-रूप तथा कर्म रूप प्रपंच को अपनी आत्मा के यथार्थ स्वरूप-ज्ञान के द्वारा स्वस्थ, प्रशान्त तथा कृतार्थ हुआ जा सकता है, इसीलिये उसे (आत्म-स्वरूप को) देखने के लिये –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।। १/३/१४

अन्वयार्थ – (हे जीवो), **उतिष्ठत** उठो (आत्मज्ञान की ओर दृष्टि करो), **जाग्रत** (अज्ञान निद्रा से) जागो, **वरान्** श्रेष्ठ आचार्यों को **प्राप्य** प्राप्त करके (के पास जाकर) **निबोधत** (आत्मा को) जान लो। (जैसे) **क्षुरस्य** छुरे की **निशिता** तेज की हुई **धारा** धार पर **दूरत्यया** चलना कठिन है, (वैसे ही) **तत्** वह **पथः** मार्ग (भी) **दुर्गम्** अत्यन्त दुर्गम है – (ऐसा) **कवयः** मेधावी/ऋषि लोग **वदन्ति** कहते हैं।

भावार्थ – हे जीवो, (अज्ञान-निद्रा से) उठो, (मोह-निद्रा से) जागो, श्रेष्ठ आचार्यों के पास जाकर आत्मा को जान लो। मेधावी लोग कहते हैं कि जैसे छुरे की तेज की हुई धार पर चलना कठिन है, वैसे ही यह मार्ग (भी) अति दुर्गम है।

भाष्यम् - अनादि-अविद्या-प्रसुप्ताः उत्तिष्ठ हे जन्तवः, आत्मज्ञान-अभिमुखा भवत; जाग्रत अज्ञान-निद्राया घोर-रूपायाः सर्व-अनर्थ-बीजभूतायाः क्षयं कुरुत । कथम् ?

भाष्य-अनुवाद – हे अनादि अविद्या में सोये हुए जन्तुओ, उठो अर्थात् आत्मज्ञान की ओर उन्मुख होओ और समस्त अनर्थों की बीजभूत घोर अज्ञान-रूपी निद्रा से जागो अर्थात् उसका नाश करो। – कैसे करें? –

प्राप्य उपगम्य वरान् प्रकृष्ट-आचार्यान् तद्विदः, तदुपदिष्टं सर्वान्तरम् आत्मानम् अहम् अस्मि इति निबोधत अवगच्छत; न हि उपेक्षितव्यम् इति श्रुतिः अनुकम्पया आह मातृवत्, अति-सूक्ष्म-बुद्धि-विषयत्वात् ज्ञेयस्य ।

श्रेष्ठ आचार्यों, उसके ज्ञाताओं के पास जाकर, उनसे उपदेश लेकर यह जान लो कि 'मैं ही वह सर्वान्तर्यामी आत्मा हूँ'। श्रुति माता के समान दया करके कह रही है, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ज्ञेय वस्तु (आत्मा) अति सूक्ष्म बुद्धि का विषय है।

किम् इव सूक्ष्म-बुद्धिः इति, उच्यते – क्षुरस्य धारा अग्रं निशिता तीक्ष्णीकृता दुरत्यया दुःखेन अत्ययः यस्याः सा दुरत्यया । यथा सा पद्भ्यां दुर्गमनीया तथा दुर्गं दुःसम्पाद्यम् इति एतत्; पथः पन्थानं तत् तं ज्ञान-लक्षणं मार्गं कवयः मेधाविनः वदन्ति । ज्ञेयस्य अति-सूक्ष्मत्वात् तद्विषयस्य ज्ञानमार्गस्य दुःसम्पाद्यत्वं वदन्ति इति अभिप्रायः ।।१४ (६८)।।

किस प्रकार यह सूक्ष्म बुद्धि का विषय है – यह बताते हैं। तीक्ष्ण किये हुए छुरे की धार के समान – जिस पर चलना अत्यन्त कठिन हो, उसे दुरत्यया कहते हैं। मेधावी (ऋषि) लोग कहते हैं कि जैसे उस पर पाँवों से चलना कठिन है, वैसे ही इस ज्ञानरूपी मार्ग पर भी चलना कठिन है। अर्थात् ज्ञेय वस्तु के अति सूक्ष्म होने के कारण, उसे प्राप्त करानेवाले ज्ञानमार्ग को भी अत्यन्त कठिन बताते हैं।

* * *

तत् कथम् अति-सूक्ष्मत्वं ज्ञेयस्य, इति उच्यते । स्थूला तावत् इयं मेदिनी शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-उपचिता सर्व-इन्द्रिय-विषयभूता तथा शरीरम् । तत्र एकैक-गुण-अपकर्षेण गन्धादीनां सूक्ष्मत्व-महत्त्व-विशुद्धत्व-नित्यत्व-आादि-तारतम्यं दृष्टम् अप्-आदिषु यावत् आकाशम् इति । ते गन्धादयः सर्व एव स्थूलत्व-आदि कारणाः शब्दान्ताः यत्र न सन्ति, किमु तस्य सूक्ष्मत्व आदि निरतिशयत्वं वक्तव्यम् इति एतत् दर्शयति श्रुतिः –

ज्ञातव्य वस्तु कितनी अधिक सूक्ष्म है, यही बताते हैं। यह पृथ्वी स्थूल है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध (पाँच गुणों) द्वारा रचित होने से पाँचों इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है, वैसा ही यह शरीर भी है। इनमें से गन्ध आदि एक-एक गुण को हटाने से उसकी सूक्ष्मता, महत्ता, विशुद्धता, नित्यता आदि का तारतम्य देखने में आता है, जब तक कि आकाश तक नहीं पहुँच जाता।* तो फिर उस तत्त्व की अतिशय सूक्ष्मता के विषय में क्या कहा जाय, जिसमें गन्ध से लेकर शब्द तक – इन सभी की स्थूलता आदि के आश्रयभूत द्रव्य तक विद्यमान नहीं रहते, श्रुति अब यही दिखा रही है –

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।। १५ (६९) ।।

अन्वयार्थ – **यत्** जो **अशब्दम्** शब्द रहित है, **अस्पर्शम्** स्पर्श रहित है, **अरूपम्** रूप रहित है, **अरसम्** रस रहित है, **तथा अगन्धवत् च** और वैसे ही गन्ध रहित है, **अव्ययम्** क्षय रहित है, **नित्यम्** शाश्वत है, **अनादि** उत्पत्ति रहित है, **अनन्तम्** अन्त रहित है, (जो) **महतः** हिरण्यगर्भ उपाधि वाले बुद्धिरूप महत्तत्त्व से **परम्** विलक्षण है, **ध्रुवम्** कूटस्थ नित्य है, **तत्** उस ब्रह्मरूप आत्मा को **निचाय्य** जानकर (जीव) **मृत्यु-मुखात्** मृत्यु के मुख से **प्रमुच्यते** मुक्त हो जाता है।

भावार्थ – जो शब्द रहित है, स्पर्श रहित है, रूप रहित है, रस रहित है, और वैसे ही गन्ध रहित है, क्षय रहित है, शाश्वत है, उत्पत्ति रहित है, अन्त रहित है, (जो) हिरण्यगर्भ की उपाधि वाले बुद्धि-रूप महत्तत्त्व से (भी) विलक्षण है, कूटस्थ नित्य है, उस ब्रह्मरूप आत्मा को जानकर (जीव) मृत्यु के मुख से मुक्त हो जाता है।

भाष्यम् – अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम् अव्ययं तथा अरसम् नित्यम् अगन्धवत् च यत्, एतत् व्याख्यातं ब्रह्म अव्ययम् – यत् हि शब्द-आदिमत् तत् व्येति; इदं तु अशब्द-आदिमत्त्वात् अव्ययं न व्येति न क्षीयते ; अत एव च नित्यम्; यत् हि व्येति, तत् अनित्यम्; इदं तु न व्येति, अतः नित्यम्।

भाष्य-अनुवाद – शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध से रहित, अव्ययं तथा **नित्य** के रूप में जिस ब्रह्म की व्याख्या की गयी है, वह **अव्यय** है। जो शब्द आदि वाला है, अत: उसका व्यय भी होता है। परन्तु चूँकि यह शब्द आदि से रहित होने के कारण अव्यय है, न व्यय होता है न क्षय; अतएव यह नित्य है; जिसका व्यय होता है, वह अनित्य होता है। इसका व्यय नहीं होता, अत: यह नित्य है।

इतः च नित्यम् – अनादि अविद्यमानः आदिः कारणम् अस्य तत् इदम् अनादि। यत् च आदिमत्, तत् कार्यत्वात् अनित्यं कारणे प्रलीयते यथा पृथिवी-आदि; इदं तु सर्व-कारणत्वात् अकार्यम्, अकार्यत्वात् नित्यम्; न तस्य कारणम् अस्ति यस्मिन् प्रलीयेत। तथा अनन्तम् अविद्यमानः अन्तः कार्यम् अस्य तत् अनन्तम्। यथा कदली-आदेः फल-आदि-कार्य-उत्पादनेन अपि अनित्यत्वं दृष्टम्, न च तथा अपि अन्तवत्त्वं ब्रह्मणः; अतः अपि नित्यम्।

इसका आदि या कारण विद्यमान नहीं है, अत: यह **अनादि** है और इस कारण भी यह नित्य है। जिसका आदि होता है, वह कार्यरूप होने के कारण अनित्य है और अपने कारण में विलीन हो जाता है, जैसा कि पृथिवी आदि। परन्तु सबका कारण होने से यह किसी का कार्य नहीं है, किसी का कार्य न होने के कारण नित्य है; इसका कोई कारण नहीं है, जिसमें कि यह विलीन हो। इसी प्रकार यह **अनन्त** है, अर्थात् इसका कोई अन्त या कार्य विद्यमान नहीं है। जैसे केले आदि के वृक्ष फल आदि कार्य का उत्पादन करने पर भी अनित्य देखे जाते हैं, ब्रह्म का वैसा कोई अन्तवत्ता देखने में नहीं आती, इस कारण भी यह **नित्य** है।

महतः महत्तत्त्वात् बुद्धि-आख्यात् परं विलक्षणं नित्य-विज्ञप्ति-स्वरूपत्वात्; सर्वसाक्षि हि सर्वभूतात्मत्वात् ब्रह्म। उक्तं हि – 'एष सर्वेषु भूतेषु' (कठ. १/३/१२) इत्यादि। ध्रुवं च कूटस्थं नित्यं न पृथिवी-आदिवत् आपेक्षिकं नित्यत्वम्। तत् एवंभूतं ब्रह्म आत्मानं निचाय्य अवगम्य तम् आत्मानं मृत्युमुखात् मृत्यु-गोचरात् अविद्या-काम-कर्म-लक्षणात् प्रमुच्यते वियुज्यते (विमुच्यते) ।। १५ (६९)।।

नित्य-चैतन्य-स्वरूप होने के कारण यह (ब्रह्म) बुद्धि नामक महत्-तत्त्व से भी विलक्षण (भिन्न) है, क्योंकि यह सबका साक्षी तथा समस्त भूतों की अन्तरात्मा है। कहा जा चुका है, "यह समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है" आदि। और यह ध्रुव अर्थात् नित्य-अपरिवर्तनशील है; इसकी नित्यता पृथिवी आदि के जैसी आपेक्षिक नहीं है। ऐसे स्वरूप वाला जो ब्रह्मरूप आत्मा है, उस आत्मा को प्राप्त करके व्यक्ति अविद्या-कामना-कर्म रूपी मृत्यु के मुख से छूट जाता है।

* * *

प्रस्तुत-विज्ञान-स्तुत्यर्थम् आह श्रुतिः –

अब तक प्रस्तुत किये गये विज्ञान की स्तुति करते हुए श्रुति कहती है –

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ।।१६।

अन्वयार्थ – **नाचिकेतम्** नचिकेता द्वारा सुने हुए (और) **मृत्यु-प्रोक्तम्** यमराज द्वारा कहे हुए **सनातनम्** (इस) शाश्वत

---

* पृथ्वी की अपेक्षा जल में, जल की अपेक्षा अग्नि में, अग्नि की अपेक्षा वायु में और वायु की अपेक्षा आकाश में अधिक मात्रा में सूक्ष्मता, महत्ता, विशुद्धता, नित्यता आदि विद्यमान हैं।

उपाख्यानम् (तीन वल्लियों के) उपाख्यान (को) **उक्त्वा** कहकर **श्रुत्वा** तथा सुनकर **मेधावी** विवेकी पुरुष **ब्रह्मलोके** ब्रह्म-स्वरूप में **महीयते** महिमावान होकर पूजित होते हैं।

भावार्थ – नचिकेता द्वारा सुने हुए (और) यम-धर्मराज द्वारा कहे हुए, (इस) शाश्वत (तीन वल्लियों के) उपाख्यान (को) कहकर तथा सुनकर विवेकी पुरुष ब्रह्म-स्वरूप में महिमावान होकर पूजित होते हैं।

भाष्यम् – नाचिकेतं नचिकेतसा प्राप्तं नाचिकेतं मृत्युना प्रोक्तं मृत्यु-प्रोक्तम् इदम् आख्यानम् उपाख्यानं वल्ली-त्रय-लक्षणं सनातनं चिरंतनं वैदिकत्वात् उक्त्वा ब्राह्मणेभ्यः श्रुत्वा च आचार्येभ्यः मेधावी ब्रह्म एव लोकः ब्रह्मलोकः तस्मिन् ब्रह्मलोके महीयते आत्मभूत उपास्यः भवति इति अभिप्रायः ।। १६ (७०)।।

भाष्य-अनुवाद – मृत्यु (यम) द्वारा कथित और नचिकेता द्वारा प्राप्त, तीन वल्लियों वाला यह उपाख्यान चिरन्तन तथा वैदिक है, अत: आचार्यों द्वारा कहे जाने तथा ब्रह्म-जिज्ञासुओं द्वारा सुने जाने पर, ब्रह्म ही लोक है जो, उसे ब्रह्मलोक कहते हैं, उसमें महिमान्वित होता है अर्थात् ब्रह्म के साथ आत्मभूत (एकात्म) होकर सबका उपास्य (पूज्य) बन जाता है।

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते ।।
तदानन्त्याय कल्पत इति ।।१७ (७१) ।।

अन्वयार्थ – **यः** जो कोई **प्रयतः** शुद्धचित्त से **इमम्** इस **परमम्** अतिशय **गुह्यम्** गोपनीय (उपाख्यान को) **ब्रह्मसंसदि** ब्राह्मणों की सभा में **वा** या **श्राद्धकाले** श्राद्ध के समय (भोजन करते हुए ब्राह्मणों को) **श्रावयते** अर्थसहित सुनवाता है, (वह) **तत्** उस (सुनवाने या श्राद्धकर्म द्वारा) **अनन्त्याय** अनन्त फल को प्राप्त करने में **कल्पते** समर्थ होता है। **तदानन्त्याय कल्पते** (द्विरुक्ति अध्याय-समाप्ति का सूचक है)।

भावार्थ – जो कोई भी, शुद्धचित्त से इस अति गोपनीय (उपाख्यान को) ब्राह्मणों की सभा में या श्राद्ध के समय (भोजन करते हुए ब्राह्मणों को) अर्थसहित सुनवाता है, (वह) उस (सुनवाने या श्राद्धकर्म द्वारा) अनन्त फल प्राप्त करने में समर्थ होता है। (द्विरुक्ति अध्याय-समाप्ति का सूचक है)।

भाष्यम् – यः कश्चित् इमं ग्रन्थं परमं प्रकृष्टं गुह्यं गोप्यं श्रावयेत् ग्रन्थतः अर्थतः च ब्राह्मणानां संसदि ब्रह्मसंसदि प्रयतः शुचिः भूत्वा श्राद्धकाले वा श्रावयेत् भुञ्जानानाम्, तत् श्राद्धम् अस्य आनन्त्याय अनन्त-फलाय कल्पते सम्पद्यते। द्विः वचनम् अध्याय-परिसमाप्ति-अर्थम् ।। १७ (७१)।।

भाष्य-अनुवाद – जो कोई भी व्यक्ति, पवित्र होकर, ब्रह्म-जिज्ञासुओं की सभा में या श्राद्ध के समय भोजन करते हुओं को यह उत्कृष्ट गोपनीय ग्रन्थ या इसकी व्याख्या को सुनवायेगा, उसका वह श्राद्ध अनन्त फल की प्राप्ति करायेगा। पुनरुक्ति अध्याय की समाप्ति का सूचक है। ❖ **(क्रमशः)** ❖

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

यतिरसदनुसन्धिं बन्धहेतुं विहाय
स्वयमयमहमस्मीत्यात्मदृष्ट्यैव तिष्ठेत् ।
सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या
हरति परमविद्याकार्यदुःखं प्रतीतम् ।।३३३।।

अन्वय – यतिः बन्ध-हेतुं असद्-अनुसन्धिं विहाय 'अयं स्वयं अहम् अस्मि' इति आत्म-दृष्ट्या एव तिष्ठेत्। स्वानुभूत्या ब्रह्मणि निष्ठा ननु सुखयति परं प्रतीतम् अविद्या-कार्य-दुःखं हरति।

अर्थ – संन्यासी को चाहिये कि वह बन्धन में डालनेवाले देह आदि मिथ्या वस्तुओं की चिन्ता छोड़कर "यह आत्मा मैं स्वयं हूँ" – ऐसी आत्मदृष्टि में स्थिर हो जाय। क्योंकि ब्रह्म के साथ अपने आत्मा के इस अभिन्नता की अनुभूति से प्राप्त निष्ठा ही परम सुख का कारण होती है और अविद्या के फलस्वरूप होनेवाले दुःखों का हरण करती है।

बाह्यानुसन्धिः परिवर्धयेत्फलं
दुर्वासनामेव ततस्ततोऽधिकाम् ।
ज्ञात्वा विवेकैः परिहृत्य बाह्यं
स्वात्मानुसन्धिं विदधीत नित्यम् ।।३३४।।

अन्वय – बाह्य-अनुसन्धिः फलं दुर्वासनां एव ततः ततः अधिकाम् परिवर्धयेत्। विवेकैः ज्ञात्वा बाह्यं परिहृत्य नित्यम् स्व-आत्म-अनुसन्धिम् विदधीत।

अर्थ – बाह्य विषयों के चिन्तन के फलस्वरूप दुखदायी कामनाएँ क्रमश: अधिकाधिक बढ़ती जाती हैं – इस बात को विवेक के द्वारा जानकर बाह्य विषयों का चिन्तन छोड़कर नित्य-निरन्तर अपनी आत्मा के चिन्तन में लगे रहो।

बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता
मनःप्रसादे परमात्मदर्शनम् ।
तस्मिन्सुदृष्टे भवबन्धनाशो
बहिर्निरोधः पदवी विमुक्तेः।।३३५।।

अन्वय – बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता, मनः प्रसादे परमात्म-दर्शनम्, तस्मिन् सुदृष्टे भव-बन्ध-नाशः, बहिः-निरोधः विमुक्तेः पदवी।

अर्थ – बाह्य विषयों का चिन्तन छूट जाने पर मन की प्रसन्नता प्राप्त होती है, मन की प्रसन्नता से परमात्मा का दर्शन होता है, परमात्मा का दर्शन होने पर संसार (आवागमन) के बन्धन का नाश हो जाता है; अत: बाह्य विषयों के चिन्तन का त्याग ही मोक्ष-प्राप्ति का उपाय है। ❖ **(क्रमशः)** ❖

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर - २०१२

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द जयन्ती' के उपलक्ष्य में छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व-विकास और चरित्र-निर्माण हेतु ३ जनवरी, मंगलवार से ११ जनवरी, बुधवार तक विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन आश्रम के सत्संग भवन में प्रतिदिन सायं ६ बजे किया गया, जिसमें छात्र-छात्राओं ने उत्साह के साथ भाग लेकर अपने बहुमूल्य विचारों का विनिमय कर अपने विकासमान व्यक्तित्व का परिचय दिया। प्रस्तुत है उसी का सुविस्तृत विवरण –

३ जनवरी, मंगलवार, को 'अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' आयोजित थी, जिसका विषय था – स्वामी विवेकानन्द की विश्व को देन। प्रथम पुरस्कार विजेत्री **कुमारी रुचि प्रिया** ने कहा, "तुम अमृत की सन्तान हो। स्वामीजी के भाषणों में विश्वबन्धुत्व की एकसूत्रता थी। हर मनुष्य को अपनी मुक्ति की साधना स्वयं करनी होती है। सभी जीवों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है।" द्वितीय पुरस्कार विजेता जी.ई.सी. इंजिनियरिंग कॉलेज के छात्र **श्री अनिकेत झा** ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द ने देशवासियों को भारत के प्राचनी गौरव का बोध कराया, युवाशक्ति का बोध कराया, युवाओं में आत्मविश्वास को जगाया, मूर्ख-चांडाल को देवता माना, शरीर-मन को स्वस्थ एवं शिक्षा तथा सर्वधर्म-सद्भाव का संदेश दिया।" **अखिल श्रीवास्तव** ने कहा, "धर्म – जीवन में आनन्द प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। युवाओं के लिये विवेकानन्द से बढ़कर दूसरा कोई नेता नहीं हो सकता।" **कुमारी आराधना** ने कहा, "स्वामीजी ने जीवन निर्माण, मानव-निर्माण, चरित्र-निर्माण, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास, धर्म और विज्ञान को साथ-साथ चलने की शिक्षा दी।" **मोहन पाल** ने कहा, "स्वामीजी ने विश्व की सारी समस्याओं का समाधान अपनी शिक्षाओं से किया। भारत की नारी समस्या, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, स्वास्थ, सेवा आदि पर स्वामीजी ने विशेष बल दिया। स्वामीजी एक देशभक्त थे। वे देश, स्थान, जाति आदि से परे सम्पूर्ण मानव से प्रेम करते थे। सम्पूर्ण विश्व-संस्कृति के प्रतीक थे।" **दिनेश राठौर** ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द जीवन्त शक्ति के प्रतीक थे। उन्होंने सारे संसार में वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। उनमें अदम्य शक्ति थी। स्वामीजी ने कहा था – 'मैं उस ईश्वर का सेवक हूँ, जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।' स्वामीजी ने भारत के नव-निर्माण में अविस्मरणीय महान योगदान किया।"

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये छत्तीसगढ़ कॉन्सील ऑफ साइंस एण्ड टेक्नालोजी के निदेशक **श्री मुकुन्द हम्बर्डे** ने कहा, "राजसूय यज्ञ में अर्जुन ने द्रोणशिष्य के रूप में अपना परिचय दिया, वैसे ही श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी हैं। उनके गुरु ने ही उन्हें अनुप्राणित किया था। स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन विश्व के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्वरूप के अनुसार शिक्षा दी। उस समय अँग्रेजों का शासन था। भारत में भाइयो और बहनो का सम्बोधन स्वाभाविक जीवन-पद्धति से सम्बन्धित है। किन्तु विदेश में इसका अधिक महत्व है। विश्व को शान्ति, सद्भावना, दया, कर्तव्य-पालन तथा आध्यात्मकिता को कसौटी पर कसने का संदेश स्वामीजी ने दिया। प्यारे बच्चो, जीवन में कम-से-कम कोई एक सूत्र को आचरण में लायें।"

४ जनवरी, बुधवार को 'अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता' का आयोजन था। प्रथम पुरस्कार विजेता **श्री अनिकेत झा** ने 'छत्तीसगढ़ के विकास के बढ़ते कदम' पर अपने विचार प्रकट किये और द्वितीय पुरस्कार विजेता **श्री अखिल श्रीवास्तव** ने 'बार-बार ट्रॉफिक स्क्वायर' में अपने व्यावहारिक सुझाव दिये। **निहारिका अग्रवाल, मणिमाला दूबे, अंकिता अग्रवाल, पूजा गोस्वामी** और **पीयूष प्रखर** ने भी अपने-अपने विषयों पर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये।

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष **श्री एम. ए. खान** ने की। उन्होंने कहा, "तात्कालिक भाषण मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाते हैं। युवा इस देश की शक्ति हैं। मीडिया के द्वारा फैलाये जा रहे वैचारिक प्रदूषण पर रोक लगनी चाहिये। नया रायपुर बने, किन्तु अन्य बुराइयों से बचा रहे, जो कि अन्य शहरों में पायी जा रही हैं। ग्रामीण लोगों को ग्रामीण परिवेश में शिक्षा मिलनी चाहिये, जहाँ पेड़-पौधे, पोखर-तालाब आदि हों।"

५ जनवरी, बृहस्पतिवार को 'अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता' आयोजित थी। विषय था – "इस सदन की राय में समाज के गिरते नैतिक मूल्यों के लिये जन-साधारण की अपेक्षा राजनीतिज्ञ ही अधिक उत्तरदायी हैं।" इस प्रतियोगिता में दो प्रतिभागियों – **रुचि प्रिया** और **अखिल श्रीवास्तव** ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किये। दोनों ने विषय के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये थे। द्वितीय पुरस्कार विपक्ष

की प्रतिभागी **कुमारी निहारिका अग्रवाल** को मिला।

कुमारी मीनल बंछोर ने कहा, ''नैतिकता की प्रथम शिक्षा अपने माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, शिक्षकों और समाज से मिलती है। अत: अनैतिकता और भ्रष्टाचार के लिये हमारा परिवार और समाज ही दोषी है।'' **अनिकेत झा** ने कहा, ''जन-साधारण से अधिक दोषी राजनेता हैं। क्योंकि नेताओं की संसद की बात पूरे देश और विश्व तक पहुँचती है। जबकि जन-साधारण की बात ६ या आसपास के लोगों तक ही पहुँचती है। हर व्यक्ति को एक वर्तमान आदर्श की आवश्यकता होती है, जिसका हमें अभाव है।''

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष **श्री जीवनलाल भारद्वाज** ने की। अपने अध्यक्षीय संबोधन में उन्होंने कहा, ''मेरे मन में यह बात आयी कि संतों ने यह विषय छात्रों के लिये क्यों चुना है? निश्चय ही सन्तगण भ्रष्टाचार से आहत हैं। राष्ट्र जीवन की आजादी के ६४ साल बाद और ६० वर्ष की पंचवर्षीय योजना के बाद भी हमें जन-लोकपाल, नागरिक संहिता, विदेशी धन वापसी, गरीबी-उन्मूलन, शिक्षा-स्वास्थ्य आदि के बारे में सोचना पड़ रहा है। जब सिकन्दर ने सुकरात से पूछा कि मैं आपके लिये भारत से क्या लाऊँ? तो सुकरात बोले – भारत से मेरे लिये गीता, वेद और उपनिषद् लाना। यही तुम्हारी हमारे लिये गुरुदक्षिणा होगी। चींटी और हर व्यक्ति अपनी व्यवस्था कर लेता है, किन्तु महान है वह, जो दूसरों की सेवा करता है।''

६ जनवरी को 'अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता'' का विषय था – ''इस सदन की राय में व्यक्ति का चरित्र-गठन कानून की अपेक्षा शिक्षा के द्वारा अधिक संभव है।'' इस प्रतियोगिता में भी दो प्रथम पुरस्कार विजेता रहे। प्रथम पुरस्कार विजेता **महेन्द्र कुर्रे** ने विषय के पक्ष में कहा कि अन्ना हजारे का चरित्र स्वामी विवेकानन्द, गौतम बुद्ध और महात्मा गाँधी की शिक्षा का परिणाम है, किसी कानून का नहीं। दूसरे प्रथम पुरस्कार विजेता **ओम दूबे** ने विपक्ष में कहा कि डिग्री खरीदने से चरित्र-निर्माण नहीं होता। गुरु नानक और रामकृष्ण परमहंस की शैक्षिक योग्यता कम होने पर भी वे महान चरित्रवान थे। कानून की लचर व्यवस्था के कारण ही आज प्रधानमंत्री आदि सभी मजबूर हैं। अत: कानून द्वारा ही चरित्र-गठन संभव है।'' द्वितीय पुरस्कार विजेता **सुशान्त झा** ने विषय के विपक्ष में बोलते हुये सदन और साथियों से पूछा कि क्या सरकार और संसद में लोग शिक्षित नहीं हैं? १० % चरित्रवान लोग स्वयं अनुशासित रहते हैं, पर बाकी ९० % लोगों को कानून से ही सुधारना पड़ता है।''

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय, रायपुर की प्राचार्या **श्रीमती अरुणा पलटा** ने कहा, ''प्रतिभागियों के विचार बड़े ही सारगर्भित थे। शिक्षित होने के लिये अनुशासन बहुत ही आवश्यक है। चरित्र-गठन के लिये दोनों का संतुलित उपयोग आवश्यक है। कानून का उल्लंघन किस परिस्थिति में हुआ यह महत्वपूर्ण है। जैसे कोई बीमार पिता को लेकर गाड़ी से जा रहा है और ट्रैफिक जाम है। यदि उसने ट्रैफिक नियमों को तोड़कर गाड़ी आगे ले जाकर अस्पताल में भर्ती कराकर पिता की जान बचाने का प्रयास करता है, तो वह कानून का उल्लंघन बुरा नहीं है।

''एक बार एक बच्चा नदी में डूब रहा था। दूसरे किसी व्यक्ति ने उसको डूबने से बचा लिया। बच्चे ने बचाने वाले व्यक्ति से कहा – मैं क्या आपको धन्यवाद दूँ? उस व्यक्ति ने कहा – बड़े होने पर याद रखना कि क्या तुम बचने के लायक थे? तभी तुम्हारा बचना सार्थक होगा।

''अल्बर्ट नोबल के नाम से नोबल पुरस्कार दिया जाता है। एक बार अखबार में झूठी सूचना छपी कि उनका देहान्त हो गया। अल्बर्ट बिना कोई स्पष्टीकरण दिये चुपचाप देखने लगे कि लोग मेरे बारे में क्या-क्या प्रतिक्रिया कर रहे हैं। सबने खूब प्रशंसा की। एक व्यक्ति का वक्तव्य एक अखबार में प्रकाशित हुआ, ''सबको मृत्यु का निमंत्रण देनेवाले की मृत्यु हो गयी।'' इसे पढ़कर नोबल का जीवन बदल गया। वे दमन छोड़कर सबसे प्रेम और सद्व्यवहार करने लगे।

''एक आदमी समुद्र के किनारे घूम रहा था। समुद्र की तेज तरंगों से मछलियाँ छिटककर तट की तपती बालू में आ जाती और तड़प कर मरने लगतीं। वह व्यक्ति एक-एक कर मछलियों को समुद्र में फेंक रहा था। जो मछलियाँ समुद्र में जातीं वे जीवित हो जातीं। मछलियाँ बहुत संख्या में आ रही थीं, लेकिन यह व्यक्ति बहुत कम मात्रा में ही फेंक पा रहा था। इसके कार्य को देखकर एक दूसरे व्यक्ति ने कहा कि तुमको इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। क्योंकि मछलियाँ बहुत हैं। उस व्यक्ति ने कहा कि मुझको कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, लेकिन जीवित बचने वाली मछलियों को अन्तर पड़ रहा है। वे जीवित होती जा रही हैं। इस प्रकार व्यक्ति छोटे-छोटे कार्यों से महान होता है।''

७ जनवरी, शनिवार को 'अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता' थी। प्रथम पुरस्कार विजेत्री राजकुमार कॉलेज की **कुमारी मेघा चौबे** का विषय था 'आत्मविश्वास से ही सफलता मिलती है'। उन्होंने कहा कि सफलता मानसिक शान्ति एवं प्रसन्नता से मिलती है। आत्मविश्वासी हमेशा खुश एवं शान्त रहता है। सुभाषचन्द्र बोस ने आत्मविश्वास के बल पर ही आजाद हिन्द फौज का गठन किया था। महात्मा गाँधी, अल्बर्ट आईंस्टीन आदि की सफलता का रहस्य आत्मविश्वास ही था।'' द्वितीय पुरस्कार विजेता केन्द्रीय विद्यालय के **सुशान्त झा** ने 'मानवता के प्रति बढ़ते शत्रु' विषय पर कहा, ''मानवता के लिये चरित्रवान बनना पड़ता

है। चरित्रवान बनने के लिये अनुशासन में रहना पड़ता है। नीति का पालन न करने से हम मानवता के शत्रु बन जाते हैं। चरित्रवान बनने का लाभ हमें सबको बताना पड़ेगा। हमें मानवता के शत्रुओं की विचारधारा बदलनी पड़ेगी।'' **हितेश बढ़ई** ने कहा, ''जो लोगों के काम आये, वही असली धर्म है।'' **घनश्याम साहू** ने कहा, ''अब्राहम लिंकन भाग्य के भरोसे राष्ट्रपति नहीं बने थे, वे अपने पुरुषार्थ से बने थे।''

इस सत्र के अध्यक्ष रविशंकर विश्वविद्यालय के फार्मेसी विभागाध्यक्ष **प्रो. शैलेन्द्र सर्राफ** ने कहा, ''मोबाइल, कम्प्यूटर, टी.वी. आदि से आधिभौतिक विकास के साथ-साथ नैतिकता का ह्रास हुआ है। उच्च पदस्थ लोगों में भी घमंड आ जाता है, जिससे पतन होता है। लेकिन नम्रता से विकास होता है। जैसे हनुमानजी को उनकी शक्ति को याद दिलाना पड़ता था – पवन तनय बल पवन समाना आदि। वैसे ही युवाओं को भी उनकी शक्ति को याद दिलाने की आवश्यकता है। नारियों का भविष्य उज्ज्वल अभी भी है और भविष्य में भी रहेगा। छात्रायें सब कार्य व्यवस्थित रूप से करती हैं। आज समाज को नेतृत्व की आवश्यकता है।''

८ जनवरी, रविवार को 'अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था 'शक्ति के उद्बोधक स्वामी विवेकानन्द।' प्रथम पुरस्कार विजेता केन्द्रीय विद्यालय के छात्र **श्री सुशान्त झा** ने कहा, ''स्वामीजी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये ब्रह्मचर्य पर बहुत जोर देते थे।'' सुशान्त ने स्वामीजी के बहुत से उद्धरण प्रस्तुत किये। द्वितीय पुरस्कार के दो विजेता – विद्यापीठ कोटा, रायपुर के **महेन्द्र कुर्रे** और **संजय साहू** थे। महेन्द्र कुर्रे ने कहा कि स्वामीजी का सन्देश – बल ही जीवन और दुर्बलता ही मृत्यु है, ये युगों-युगों तक अमर रहेंगे और मनुष्य-जाति को राह दिखाते रहेंगे। संजय साहू ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द ने भारत में व्याप्त कुसंगतियों, कुरीतियों को दूर कर भारतवासियों को भारत की गौरवान्वित संस्कृति से परिचित कराकर उनकी शक्ति का बोध कराया। **मानवेन्द्र ठाकुर** ने कहा, ''स्वामी विवेकानन्द का एक ही लक्ष्य था, भारत ही नहीं, सम्पूर्ण मानव-जाति के हृदय से अज्ञान-अन्धकार को दूर कर विश्व-बन्धुत्व के द्वारा मानवता की स्थापना करना।'' **मेघा चैबे** ने स्वामीजी की प्रेरक वाणी – 'उठो, जागो और लक्ष्य-प्राप्ति तक रुको मत' के संबोधन के साथ कहा कि स्वामीजी के शब्द आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने वे पहले थे और भविष्य में रहेंगे। **आनन्दिता शर्मा** ने कहा – स्वामीजी का मन हिमालय की तरह अटल और पवित्र था। स्वामीजी के वचन नवयुवकों में शक्ति का संचार करते हैं। स्वामीजी ने कहा – हे नवयुवको ! तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। भारत ने जब आगे बढ़ना शुरू किया, तब पीछे मुड़कर नहीं देखा।''

इस सत्र की अध्यक्षता **डॉ. विप्लव दत्त** ने की। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा, ''स्वामीजी में जो शक्ति थी, वह आत्मबल की शक्ति थी, जिसे उनके महान गुरु श्रीरामकृष्ण ने प्रकट किया था। बाद में स्वामीजी ने उसी शक्ति का प्रचार पूरे विश्व में करके मानव-समाज को जाग्रत किया।''

९ जनवरी, सोमवार को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' थी, जिसका विषय था – मेरे जीवन के आदर्श स्वामी विवेकानन्द। विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र **विक्की जगदल्ला** ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। द्वितीय पुरस्कार राजकुमार कॉलेज, रायपुर के छात्र **मृणांक चौबे** को मिला। उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा कि स्वामी विवेकानन्द ने मानवता, सत्य, धर्म, अहिंसा आदि का पाठ पढ़ाया। जीवन में निराशा आने पर स्वामीजी सांत्वना, साहस और शक्ति प्रदान करते हैं। आदर्श को साहस और संवेदना से भरपूर होना चाहिये, जो कि स्वामीजी में मिलता है। इसलिये वे हमारे जीवन के आदर्श हैं।'' होलीक्रॉस की छात्रा **समृद्धि शर्मा** ने कहा, ''आदर्श वही हो सकता है, जिसके जीवन से हम प्रेरणा प्राप्त कर सकें। स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही प्रेरणादायी आदर्श हैं। स्वामीजी ने देशभक्ति का शंखनाद किया। साम्प्रदायिक कलह को मिटाकर शान्ति एवं सद्भावना की शिक्षा दी। युवकों को उनकी शक्ति का बोध कराकर, पूरी शक्ति लक्ष्यप्राप्ति में लगाने का संदेश दिया।''

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये रविशंकर विश्वविद्यालय के प्राच्य इतिहास विभाग की रीडर प्रोफेसर **डॉ. दिनेशनन्दिनी परिहार** ने कहा, ''स्वामी विवेकानन्द पूरे भारत, सम्पूर्ण मानवता के आदर्श हैं। वे पूरे विश्व की बात करते हैं। उन्हें समझना बहुत कठिन है और आसान भी।''

१० जनवरी, मंगलवार को आयोजित 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – 'इस सदन की राय में विद्यार्थी जीवन की सफलता शिक्षक की सहायता की अपेक्षा अपने प्रयास पर अधिक निर्भर है'। प्रथम पुरस्कार विजेता विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के **खिलेश त्रिवेदी** ने विषय के विपक्ष में कहा, ''गुरु ही लिखना-पढ़ना सिखाते हैं। गुरु ही अज्ञान-अन्धकार को ज्ञान रूपी शलाका से दूर करते हैं – अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया। विद्या, विनय, विवेक आदि शिक्षक की सहायता से ही मिलते हैं। श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण अपने अपने गुरु से शिक्षा प्राप्त करके ही आगे बढ़े थे। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि गुरु भूत-भविष्य और वर्तमान को जानकर शिष्य को उचित मार्ग दिखाते हैं। राष्ट्र को तन-मन-धन अर्पित करने का मार्ग गुरु ही दिखाते हैं।''

द्वितीय पुरस्कार विद्यापीठ के ही **नागेन्द्र कुमार खुटेल** ने

प्राप्त किया। **वृजमोहन मेश्राम** ने विषय के पक्ष में कहा, "स्वयं के उद्यम एवं साहस से मिली सफलता स्थायी होती है। शिक्षक के मार्ग निर्देशन के बावजूद पढ़ना तो छात्र को ही पढ़ता है। बिना पढ़े-लिखे कोई परीक्षा पास नहीं होता। निद्रा-तन्द्रा, भय, आलस्य, क्रोध और दीर्घसूत्रता ये विद्या के शत्रु हैं, जिनसे छात्र को स्वयं संघर्ष करना पड़ता है। अत: अपने परिश्रम और दृढ़ निश्चय से सफलता मिलती है।"

इस सत्र की अध्यक्षता प्रोफेसर **आर. जी. भावे** ने की। उन्होंने कहा, "यदि आये हुये लोग यहाँ से प्रेरणा लेकर अपने परिवार, समाज में जाकर दूसरों को बतायें, तो इससे समाज का बहुत हित होगा। इस सदन में अच्छे श्रोता और मननशील लोग हैं। आज का विषय स्वयं को आत्मनिर्भर बनानेवाला संदेश देता है। हमारी संस्कृति गुरु-महिमा का गुणगान करनेवाली है। क्योंकि गुरु का शिष्य के निर्माण में बहुत योगदान होता है। शिवाजी के गुरु ने शिवाजी के अहंकार को दूर किया था। गुरु शिष्य को दर्पण दिखाते हैं। प्रसिद्ध भजन – 'गुरु बिनु ज्ञान कहाँ से पाऊँ' गुरु के महत्त्व को बताती है। वाद-विवाद के प्रतियोगी सबसे अच्छा श्रोता है, क्योंकि उनको दूसरे की बात काटनी होती है। हार में भी जीत होती है। आप बार-बार प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहें, कहीं-न-कहीं विजय अवश्य मिलेगी। इससे विजय के साथ-साथ आपका विकास होगा।"

११ जनवरी, बुधवार, को अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता थी, जिसमें केवल प्राथमिक विद्यालय के छात्र ही प्रतिभागी होते हैं और हर प्रतिभागी को ३ मिनट तक स्वामी विवेकानन्द साहित्य के कुछ अंश मौखिक सुनाने होते हैं।

इस प्रतियोगिता में भी दो प्रतिभागियों ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किये थे – प्रथम देवांगन और सिद्धि तिवारी। प्रथम पुरस्कार विजेता संत श्री आशाराम जी गुरुकुल के छात्र **प्रथम देवांगन** ने अग्निमन्त्र से 'विश्वास ! विश्वास ! विश्वास !' आदि पाठ करने के बाद कहा, "उठो, जागो, तुम्हारा लक्ष्य केवल ईश्वर की प्राप्ति है। जब तक लक्ष्य प्राप्ति न हो जप-ध्यान-सत्संग करते रहो। किसी की निन्दा मत करो। दुख-विपत्ति ईश्वर का खेल समझकर सहते रहो।" बंशल पब्लिक स्कूल, रायपुर की छात्रा **कुमारी सिद्धि तिवारी** ने स्वामीजी की वाणी का बड़े ही मधुर शब्दों में पाठ किया। द्वितीय पुरस्कार विजेता विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के **हर्ष कोशले** ने कहा, "चाहे तुम पर्वत की कन्दरा में क्यों न रहो, तुम्हारे विचार चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आयेंगे। उन्होंने देशभक्ति के आदर्श का पाठ किया। **आशुतोष ध्रुव** ने कहा, "मनुष्य का अंतिम लक्ष्य सुख नहीं, ज्ञान है और परम ज्ञान आध्यात्मिक ही माना जाता है।"

माँही तिवारी ने कहा, "तुम सब कुछ कर सकते हो। धन, यश, विद्या से कुछ नहीं होता, प्रेम से ही सब कुछ होता है।" सबसे छोटी बच्ची **प्रियंका शर्मा** ने स्वामीजी की जीवनी बताया। उसने कहा कि स्वामीजी एक सरस संन्यासी थे। उसने स्वामीजी की एक बुढ़िया और बकरी की कहानी सुनाकर सबको हँसा दिया।" वीर छत्रपति शिवाजी स्कूल की छात्रा **सुष्मिता ताम्रकार** ने कहा, "विश्वास ! विश्वास ! विश्वास ! अपने आप पर विश्वास ! परमात्मा पर विश्वास ! विश्वास के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। **तनिशा देवांगन** ने गायत्री-महामृत्युंजय मंत्र और स्वामीजी की प्रसिद्ध वाणी, 'उठो, जागो, तुम भेड़ नहीं, सिंह हो' का पाठ किया। अन्त में सभी प्रतिभागियों को 'विवेकानन्द की मनोरम कहानियाँ' नामक पुस्तक और चॉकलेट प्रदान किया गया।

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर की इतिहास विभागाध्यक्ष **डॉ. शम्बा चौबे** ने कहा, "हमारा सौभाग्य है कि स्वामीजी के जन्मदिन की पूर्वसंध्या पर हमने उन्हें याद किया। स्वामीजी को छोटे-छोटे बच्चों ने मीठी वाणी में ये सारी बातें सुनायी। स्वामीजी अमर हैं। वे सब बातें सुनते होंगे और अवश्य ही बच्चों को आशीर्वाद मिला होगा। स्वयं पर विश्वास अपना पथ-प्रदर्शन करता है। विवेकानन्द को जानना चाहिये, क्योंकि वही एक आदर्श हैं, जो अपने जीवन में करके शिक्षा देते हैं और जीवन कैसे जियें, ऐसा सिखाते हैं। राष्ट्र के शृंगार मेरे प्यारे बच्चो ! मेरे देश के साकार सपनों पर कभी आँच न आने देना।"

१२ जनवरी, बृहस्पतिवार को प्रात: ९ बजे रविशंकर विश्वविद्यालय और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संयुक्त तत्त्वावधान में 'राष्ट्रीय युवा-दिवस' मनाया गया। विश्वविद्यालय परिसर में स्थित स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति की पूजा एवं आरती की गयी। वहाँ आश्रम के संन्यासियों एवं छात्रों के द्वारा शान्ति-मन्त्र का पाठ किया गया। आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द एवं विश्वविद्यालय के कुलपति श्री एस. के. पाण्डेय तथा अन्य प्राध्यापकों-अधिकारियों ने स्वामीजी की मूर्ति पर पुष्पांजलि अर्पित की।

स्वामीजी की मूर्ति के सामने ही पांडाल में सभा आयोजित हुई। जिसमें विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना की इकाइयों के अतिरिक्त रायपुर शहर की एन.एस.एस. की इकाइयाँ भी शामिल थी। कार्यक्रम का श्रीगणेश विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्रों के प्रारंभिक भजन 'जय विवेकानन्द गुरुवर भुवन मंगलकारी' से हुआ। अतिथियों का पुष्पगुच्छ से स्वागत किया गया।

इसके बाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, रायपुर द्वारा संचालित भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त छात्र-छात्राओं के ओजस्वी व्याख्यान हुये। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओम प्रकाश वर्मा ने कहा, "स्वामी

विवेकानन्द एक सन्त, प्रकाण्ड वक्ता, समाज-सुधारक और युगाचार्य थे। युगाचार्य उसे कहते हैं, जो युग के अनुरूप जीवन-दर्शन देते हैं। स्वामी विवेकानन्द विश्व को आध्यात्मिक ऊर्जा से ओतप्रोत देखना चाहते थे। स्वामीजी ने नास्तिक-दर्शन पढ़कर भी ईश्वर में अविश्वास नहीं किया। उनका भारतीय मन इस नास्तिकता को स्वीकार नहीं कर सका। वे कई लोगों से जाकर पूछते रहे कि क्या आपने ईश्वर को देखा है? स्वामीजी के लिये मनुष्य सबसे बड़ा ईश्वर है।'' उनके बाद कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रविशंकर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. एस. के. पाण्डेय, डॉ. समरेन्द्र सिंह, राज्य जनसम्पर्क अधिकारी, राष्ट्रीय सेवा योजना, छत्तीसगढ़ शासन, रविशंकर विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री कृष्ण कुमार चन्द्राकर, श्री विजय बघेल, संसदीय सचिव, छत्तीसगढ़ शासन, ने स्वयंसेवक छात्र-छात्राओं को संबोधित किया। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने की। सभा का संचालन डॉ प्रीतिलाल जी ने किया। कार्यक्रम का समापन विवेकानन्द विद्यापीठ के बच्चों के 'वन्दे मातरम्' गीत से हुआ।

कार्यक्रम के अन्त में सभी छात्र-छात्राओं, पदाधिकारियों, कर्मचारियों, अतिथियों व श्रोताओं – करीब ११ सौ लोगों को विवेकानन्द आश्रम, रायपुर की ओर से 'व्यक्तित्व-विकास' पुस्तक और स्वादिष्ट अल्पाहार प्रदान किये गये।

१३ जनवरी, शुक्रवार को संध्या ६ बजे 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन एवं पुरस्कार वितरण समारोह कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर के कुलपति **डॉ. सच्चिदानन्द जोशी** के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का शुभारम्भ आगत अतिथियों के दीप-प्रज्वलन एवं आश्रम के संन्यासियों द्वारा वेदपाठ से हुआ। उसके बाद आश्रम-छात्रावास के बच्चों ने 'मनुष्य तू बड़ा महान है' नामक गीत प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् पांडाल में शाट-शर्किट से आग लग गयी, जिसे स्वामी देवभावानन्द की सक्रियता से तुरन्त बुझा दिया गया और कार्यक्रम बिना बाधा के पुन: प्रारम्भ हुआ। अतिथियों को माल्यार्पण आश्रम प्रबन्ध समिति के सदस्य श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया। अतिथियों का स्वागत स्वामी निर्विकारानन्द ने किया। उसके बाद आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन का आदर्श, उसका उद्देश्य और उसके द्वारा संचालित सेवायें एवं रायपुर-आश्रम के द्वारा इतने वर्षों से की जा रही जन-कल्याणकारी सेवाओं का संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् सभी भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम विजेता छात्र-छात्राओं के व्याख्यान हुये।

सभा के मुख्य वक्ता विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द ने जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्णता पाई थी। उनका जीवन स्फटिक मणि की भाँति चमकता है, चाहे उन्हें हम जिस कोण से देखें। वे भारतीय नवजागरण के अग्रदूत थे। स्वामीजी हम-सबको एक समृद्धशाली भविष्य की ओर अग्रसर करने आये थे।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर के कुलपति डॉ. सच्चिदानन्द जोशी ने ८ जनवरी, २०१२ को बेलूड़ और स्वामीजी के गृह के अपने संस्मरण सुनाते हुये कहा कि यद्यपि बेलूड़ मठ कोई पिकनिक का स्थान नहीं है, फिर भी लगता था कि पूरा कलकत्ता वहाँ उमड़कर आ गया है। यह किसका आकर्षण है? उसी महान पुरुष स्वामी विवेकानन्द जी का। जब मैं वहाँ मन्दिर में बैठा था, उस समय इतने लोगों के कोलाहल में भी मन्दिर में एक अद्भुत शान्ति थी। धीरे-धीरे कोलाहल कम हो गया और मुझे वहाँ एक नई चेतना, नई स्फूर्ति का अनुभव हुआ। स्वामीजी के कक्ष में पहुँच कर लगा कि स्वामीजी के रूप में अभी भी कोई चेतना उनकी उपस्थिति का भान करा रही है। वहाँ जाने के पहले कुछ अज्ञात कारणों से मुझे असहज लग रहा था, किन्तु वहाँ जाते ही मेरे सभी समस्याओं का समाधान हो गया। स्वामीजी आधुनिक युग के पहले वैश्विक नागरिक थे। उन्होंने कहा कि अपने आप को हमेशा विजेता मानो। मेरी युवा-पीढ़ी से अनुरोध है कि वे स्वामी विवेकानन्द जी के इन वचनों को केवल प्रतियोगिता तक सीमित नहीं रखेगी, बल्कि उन्हें अपने जीवन में उतारकर जीवन-ध्वजा फहरायेगी।''

सभा की अध्यक्षता करते हुये स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने कहा, ''किसी भी व्यक्ति या देश की शक्ति उसके चरित्र में होती है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करनेवाला कभी झूठ नहीं बोल सकता, कभी घूस नहीं ले सकता, कभी अहंकार नहीं कर सकता। हम गिलहरी की तरह अपनी शक्ति के अनुसार विराट् सेतुबन्ध जैसे जनसेवा में अपना कुछ योगदान देकर अपना जीवन धन्य बना सकते हैं। हम अपने निकटस्थ लोगों की यथाशक्ति सेवा करें। हम यह निश्चय करें कि अगले १०० वर्षों तक स्वामीजी की वाणी का पालन करेंगे।''

तत्पश्चात् आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने श्री सच्चिदानन्द जोशी और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा को उपहार में पुस्तकें सप्रेम भेंट कीं। उसके बाद श्री जोशी के द्वारा विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किये। आश्रम के छात्रावासीय बच्चों के 'हम होंगे कामयाब' गीत द्वारा सभा सुसम्पन्न हुयी। कार्यक्रम का संचालन और धन्यवाद ज्ञापन स्वामी निर्विकारानन्द जी और प्रतियोगिता के सभी सत्रों का संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया। ❑ ❑ ❑

(विवरण प्रस्तुति – रानू राम काँवड़े और गजेन्द्र कुमार पटेल, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर)